इन्द्रिय पराजय शतक

–: लेखक–संपादक :–

पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय

रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

इन्द्रिय पराजय शतक

लेखक-संपादक

परम शासन प्रभावक-जैन शासन के महान् ज्योतिर्धर पूज्यपाद
***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा.* के**
तेजस्वी शिष्यरत्न, बीसवी सदी के महान् योगी,
निःस्पृह शिरोमणि पूज्यपाद पंन्यासप्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के कृपापात्र चरम शिष्यरत्न
मरुधररत्न, गोड़वाड़ के गौरव, प्रवचन-प्रभावक,
जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर परम पूज्य आचार्यदेव
श्रीमद् विजय **श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**

156

प्रकाशक

दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग,
विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी,
मुंबई-400 002. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

तीसरी आवृत्ति • प्रतियाँ 1000 • **मूल्य:** 150/- रु.
दि. 6-8-2023 • **विमोचन स्थल :** मुनिसुव्रत स्वामी जैन मंदिर श्वे.मू. जैन संघ, निगडी, (पूना)-411 044. • **Website :** Divyasandesh.online

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 3000/- रु.

- आप जैन धर्म के रहस्य-जैन इतिहास-जैन तत्त्वज्ञान-जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप दिव्य संदेश प्रकाशन मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.*** द्वारा लिखित उपलब्ध 8 पुस्तकें दी जाएगी और **अर्हद् दिव्य संदेश** मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें (Open Book Exam साधु–साध्वी उपयोगी पुस्तके एवं पुनः मुद्रित पुस्तकों को छोडकर) घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता
भायंदर (M.S.)
M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी
C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
श्री आदिनाथ जैन टेंपल,
चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
M. 9036810930

3. राहुल वैद
C/o. अरिहंत मेटल कं.,
4403, लोटन जाट गली,
पहाड़ी धीरज, सदर बाजार,
दिल्ली-110 006.
M. 9810353108

4. चंदन एजेन्सी
607, चीरा बाजार,
मुंबई-400 002.M.9820303451

आजीवन सदस्यता शुल्क

Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

(2) दिव्य संदेश प्रचारक

प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

विवेचनकार की कलम से...

जिस सूत्र या ग्रंथ में आठ गाथाएँ हों, उसे **अष्टक** कहा जाता है। जिसमें पचास गाथाएँ हों उसे **पंचाशक** कहा जाता है तथा जिसमें 100 गाथाएँ हों, उसे **शतक** कहा जाता है।

वैराग्यशतक की भाँति इस ग्रंथ में भी 100 गाथाएँ होने से इसे **इन्द्रिय पराजय शतक** कहा जाता है।

जिस प्रकार अपने हृदय में वैराग्य भाव की पुष्टि के लिए **'वैराग्य शतक'** ग्रंथ का स्वाध्याय किया जाता है, उसी प्रकार बलवान ऐसी पाँच इन्द्रियों को जीतने के लिए **'इन्द्रिय पराजय शतक'** का स्वाध्याय करना चाहिए।

'वैराग्य शतक' की भाँति यह भी अज्ञातकर्तृक ग्रंथ है।

पूर्वाचार्य विरचित इस ग्रंथ के मर्म को जानने-समझने के लिए खर-तरगच्छीय **श्री जिनचंद्रसूरिजी** के शिष्य **पू.आ. श्री जिनसिंहसूरिजी** के शिष्य वाचकवर्य श्री **जयसोमगुरु** के शिष्य वाचक **श्री गुणविजयजी** ने वि.सं. 1667 में संस्कृत भाषा में टीका की रचना की है। उस टीका एवं उसके गुर्जर अनुवाद को लक्ष्य में रखकर प्रस्तुत हिन्दी विवेचन तैयार किया गया है।

उत्तराध्ययन सूत्र में महावीर प्रभु ने इन पाँच इन्द्रियों को अश्व की उपमा दी है। अश्व पर यदि नियंत्रण हो तो वह अश्व हमें अपने नियत स्थल पर पहुँचा देता है, परंतु अश्व पर नियंत्रण न हो तो वह गर्त में ही गिराता है।

मानव को प्राप्त पांच इन्द्रियों पर यदि अंकुश हो तो ये इन्द्रियाँ मनुष्य को भवसागर से पार उतार देती हैं और इन पर यदि अंकुश न हो तो ये ही इन्द्रियाँ आत्मा को पतन के गर्त में गिरा देती हैं।

इन इन्द्रियों को अंकुश में रखने के लिए ही पूर्वाचार्य महर्षि ने इस **'इन्द्रिय पराजय शतक'** ग्रंथ की रचना की है।

साधु-जीवन के स्वीकार के साथ ही पाँच में से चार इन्द्रियों पर तो स्वतः अंकुश आ जाता है।

- साधु फिल्मी संगीत नहीं सुनता है, अतः कर्णेन्द्रिय पर नियंत्रण आ गया।
- साधु टी.वी., पिक्चर, नाटक आदि नहीं देखते हैं, अतः चक्षुइन्द्रिय पर भी नियंत्रण आ गया।

❑ साधु बाग-बगीचे में घूमने के लिए नहीं जाते हैं । सेंट-इत्र आदि नहीं लगाते हैं, अतः घ्राणेन्द्रिय पर अंकुश आ गया ।

❑ साधु स्त्री का स्पर्श भी नहीं करते हैं, सोफासेट, गद्दी-तकिये आदि का उपयोग नहीं करते हैं, अतः स्पर्शनेन्द्रिय पर भी अंकुश आ गया ।

दीक्षा लेते ही चार इन्द्रियों को जीतने की प्रवृत्ति तो सहज हो गई, अब विशेष प्रयत्न करने का है-रसनेन्द्रिय को जीतने के लिए ।

पाँच इंद्रियों में रसनेन्द्रिय को जीतना सबसे अधिक कठिन है ।

अन्य इन्द्रियों को भी पुष्ट करने का काम तो रसनेन्द्रिय ही करती है ।

साधु को धर्मलाभ कहते ही सब कुछ खाद्य सामग्री प्राप्त हो जाती है, अतः यदि Self-control आत्म नियंत्रण न हो तो साधु के भी पतन की संभावना रहती है ।

भूतकाल में कंडरिकमुनि, अषाढाभूति आदि अनेक मुनियों का पतन रसनेन्द्रिय की गुलामी के कारण ही हुआ था ! प्रस्तुत ग्रंथ में रसनेन्द्रिय आदि इन्द्रियों को जीतने के लिए सुंदर मार्गदर्शन दिया गया है ।

हिन्दी भाषी पाठक और मुमुक्षुओं की भावना को ध्यान में रखकर ही हिन्दी विवेचन का अल्प प्रयास किया है । इसमें जो कुछ शुभ हैं वह अध्यात्मयोगी, निःस्पृह शिरोमणि परमाराध्यपाद भवोदधि तारक पूज्य गुरुदेव पंन्यास प्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** एवं निःस्पृहतामूर्ति, समता साधक पूज्यपाद **पंन्यासप्रवर श्री वज्रसेनविजयजी म.सा.** की अदृश्य कृपा का ही फल है ।

प्रस्तुत ग्रंथ का स्वाध्याय कर सभी भवबंधन से मुक्त होकर शाश्वत सुख के भोक्ता बने, इसी शुभ कामना के साथ ।

शत्रुंजय महातीर्थ
वैशाख सुदी-3, संवत् 2068
दि. 24-4-2012
(अक्षय तृतीया)

अध्यात्मयोगी, निःस्पृहशिरोमणि
पूज्यपाद पंन्यास प्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य कृपाकांक्षी
रत्नसेनसूरि

प्रकाशक की कलम से...

दीक्षा के **दानवीर परम शासन प्रभावक सुविशाल गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** के तेजस्वी शिष्यरत्न **बीसवीं सदी** के **महान योगी, निःस्पृह शिरोमणि, नवकार महामंत्र के अजोड साधक पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के चरम शिष्यरत्न प्रवचन-प्रभावक, गोडवाड के गौरव, जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर **पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा हिन्दी भाषा में आलेखित **156 वीं पुस्तक 'इन्द्रिय पराजय शतक'** हिन्दी विवेचन की **तीसरी आवृत्ति** का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यंत ही हर्ष हो रहा है।

भारत की राष्ट्र भाषी हिन्दी है। हिन्दी भाषी जैन प्रजा भारत के कोने कोने में बसी हुई है।

श्वे. मूर्तिपूजक जैन संघ में अधिकांश **साधु-साध्वीजी गुजराती भाषी** होने से उनके द्वारा सर्जित मौलिक साहित्य भी गुजराती भाषा में उपलब्ध है। हिन्दी साहित्य की बहुत बडी कमी है। पूज्य आचार्य भगवंत वर्षों से हिन्दी जैन साहित्य के सर्जन में प्रयत्नशील है। पूज्यश्री स्वयं हिन्दी भाषी होने से उनके द्वारा आलेखित हिन्दी साहित्य हिन्दी भाषी प्रजा के लिए खूब खूब उपकारक बना है। हमें आत्म विश्वास है कि पूर्व के प्रकाशनों के भांति यह प्रकाशन भी खूब खूब उपकारक सिद्ध होगा।

'जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर' पूज्य आचार्य देव
श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** का

गुण वैभव

–चेतन मेहता-भायंदर

संसार में व्यक्ति का मूल्यांकन धन के आधार पर होता हैं, जो व्यक्ति धन से समृद्ध है, वह धनवान कहलाता है, जबकि जैन शासन में व्यक्ति का मूल्यांकन गुणों के आधार पर है। साधु का वैभव उसका ज्ञान और उसकी गुण संपदा ही है।

मरुधररत्न, गोडवाड के गौरव, प्रवचन-प्रभावक, बाली नगर की शान पूज्य आचार्य देव **श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** का अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व है।

संयम जीवन के स्वीकार के बाद उन्होंने गुण संपदा को पाने के लिए समुचित प्रयास किया है।

(1) नित्य तप के तपस्वी :– जैन धर्म में दो प्रकार के तप बतलाए हैं-नित्यतप और नैमित्तिक तप !

◆ जो तप हमेशा किया जाता हैं, वह नित्य तप कहलाता है और जो तप पर्युषण, नवपदओली आदि निमित्तों को पाकर किया जाता हैं, वह नैमेत्तिक तप कहलाता है।

साधु जीवन में नित्यतप की खूब महिमा है। पूज्यश्री अपने दीक्षा दिन से नित्य तप अर्थात् एकासने की आराधना तपश्चर्या कर रहे है।

47 वर्षों से पूज्यश्री इस तप की साधना कर रहे है। चाहे जितनी प्रवचन आदि की जवाबदारी हो, लंबे लंबे विहार हो फिर भी पूज्यश्री ने यह तप नहीं छोडा है। इतने वर्षों में 3-4 बार बडी बीमारी (बुखार ओपरेशन आदि) आदि के अपवादों को छोडकर वे नियमित एकासना करते है।

(2) ज्ञान पंचमी तप :– दीक्षा के पहले से ही पूज्यश्री ज्ञान पंचमी की आराधना कर रहे है। 48 वर्षों से उनकी यह आराधना-निरंतर जारी है। यद्यपि उपवास व बडी तपश्चर्या उनके लिए कठिन हैं, फिर भी वे 48 वर्षों से प्रति मास शुक्ल पंचमी का उपवास करते है। इसके सिवाय पूज्यश्री ने वर्धमान तप की 15 ओली, शंखेश्वर

पार्श्वनाथ के तीन अट्ठम भी किये है ।
गृहस्थ जीवन में 1 उपधान तप की आराधना की है ।

(3) प्रवचन कुशल :– दीक्षा जीवन के 14 मास बाद ही पूज्यश्री ने सर्व प्रथम प्रवचन फाल्गुण शुक्ला चतुर्दशी विक्रम संवत् 2034 **पू.पं. श्री हर्षविजयजी म.** की निश्रा में नगीनदास मंडप-पाटण (गुज.) में दिया था । घटना इस प्रकार बनी !

अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी म.सा. पींडवाडा में विराजमान थे । पाटण में स्थिरवास रहे पूज्यश्री के शिष्य लकवाग्रस्त **पू.मु. श्री धर्मरत्नविजयजी म.सा.** की सेवा के लिए पूज्यश्री ने **पू.पंन्यास श्री हर्षविजयजी** आदि चार ठाणा को पाटण भेजा । नगीनदास मंडप-पाटण में 5 साधु महात्मा थे, परंतु प्रवचन करनेवाला कोई नहीं था । फाल्गुण सुदी-14 (चौमाशी चौदस) नजदीक आ रही थी । संघ के अग्रणियों ने पंन्यासजी म. को प्रवचन हेतु विनती की । पूज्यश्री ने उन्हे संतोषकारक जवाब दिया ।

5-7. दिन पहले **पू.पं.श्री हर्षविजयजी म.** ने **पू.मु.श्री रत्नेसनविजयजी** को कहा, **'रतन ! इस चौदश को तुझे प्रवचन करना है ।'**

मुनिश्री ने कहा, 'मुझ में यह शक्ति कहां ?'

पूज्य ने कहा, 'रतन ! तूं चिंता मत कर ! पूज्य गुरुदेव ने मुझे कहा है–**'प्रवचन के लिए जरुर पड़े तो रत्नसेन को बिठा देना ।'** अतः प्रवचन तुझे ही करना है ।'

मुनिश्री ने पूज्यश्री की आज्ञा शिरोधार्य की और चौमासी चौदश के दिन लगभग 400-500 लोगों की उपस्थिति में **'सम्यग्दर्शन शुद्धं'** श्लोक के ऊपर 1½ घंटे तक पूज्य पंन्यासजी म. की निश्रा में पहला प्रवचन किया । जिसे सुनकर पूज्य पंन्यासजी म. भी खुश हो गए ।

उसके बाद महिने में पांच तिथि तथा नवपद ओली में पूज्य मुनिश्री के प्रवचन हुए ।

धीरे धीरे पूज्यश्री की प्रवचन कला दूज के चांद की भांति खिलने लगी ।

◆ वि.सं. 2038 में तपस्वी सम्राट् **पू.आ.श्री राजतिलकसूरिजी म.** की आज्ञा से उन्ही की निश्रा में चातुर्मास रहे पूज्य मुनिश्री ने अपनी जन्मभूमि बाली में **'योगशास्त्र'** ग्रंथ के आधार पर चातुर्मासिक प्रवचन प्रारंभ किए। जो आजतक निरंतर जारी है। पिछले कई वर्षों से पूज्यश्री के वर्ष में लगभग 350 दिन निरंतर दैनिक प्रवचन जारी है। अपने प्रवचनों के माध्यम से उन्होंने अनेकों को धर्मबोध दिया है।

(4) गुरु समर्पण भाव :– पूज्यश्री के दिल में अपने उपकारी स्व. अध्यात्मयोगी **पू.पं.श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के प्रति अपूर्व समर्पण भाव हैं। चातुर्मास हेतु पूज्य गुरुदेवश्री अथवा पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य भगवंत की ओर से जो भी आज्ञा हुई, उसे उन्होंने सहर्ष स्वीकारा है।

गुरु समर्पण भाव तो साधु-जीवोन का प्राण है। इस समर्पण भाव ने ही उन्हे इतना ऊंचा उठाया है। **'पूज्यों के आशीर्वाद में जो शक्त हैं, वह अन्य किसी में नहीं है।'** इस जिन वचन को लक्ष्य में रखकर वे अपना जीवन जी रहे है।

(5) सरल सुबोध लेखन शैली :– दीक्षा के चार मास बाद जब नूतन **मुनिश्री रत्नसेनविजयजी म.सा.** ने **पू.पं.श्री हर्षविजयजी म.** के साथ पाटण चातुर्मास हेतु बामणवाडजी से 5 मई 1977 के शुभ-दिन शाम को विहार किया। तब विहार के पूर्व मुनिश्री ने अपने **गुरुदेव अध्यात्मयोगी पू.प.श्री भद्रंकरविजयजी म.सा.** के पास हितशिक्षा की मांग की।

पूज्यश्री ने श्रमण जीव के समुचित पालन हेतु हितशिक्षा प्रदान की ओर साथ में कहा, **'रत्नसेन ! पाटण जाने के बाद रोज एक चिंतन लिखना।'** नूतन मुनि ने पूज्यश्री की आज्ञा शिरोधार्य की। पाटण पहुंचने के बाद एक शुभ दिन अपने गुरुदेव का स्मरण कर नूतन मुनि ने चिंतन लेखन प्रारंभ किया। प्रारंभ में प्रशमरति आदि के श्लोकों के आधार पर चिंतन लिखा। फिर **'नमो अरिहंताणं'** पद पर रोज थोडा थोडा चिंतन लिखा।

पाटण चातुर्मास बाद मुनिश्री अपने गुरुदेव के चरणों में पींडवाडा पधारे। एक दिन उन्होंने अपने चिंतन की डायरी गुरुदेव को प्रदान की। पूज्यश्री ने वह डायरी पढी, उसमें रही भूलों को सुधारा। फिर बोले, **'अच्छा लिखता है।'**

बस, पूज्य उपकारी गुरुदेवश्री
के अंतः करण के आशीर्वाद का ही फल है
कि वे आज तक 237 से अधिक पुस्तकों का आलेखन,
पूज्य गुरुदेव श्री की अनेक पुस्तकों का भावानुवाद और कई ग्रंथों का संपादन कर सके है। उनकी लेखनी अत्यंत ही सरल, सुबोध और धारा प्रवाह है, जो पाठकों के दिल को छू लेती है। आज भारत के कोने-कोने में पूज्यश्री का हिन्दी साहित्य बडे चाव से पढा जा रहा है।

(6) स्वाध्याय प्रेम :– बचपन से ही पूज्य श्री सत् साहित्य प्रेमी रहे है। बचपन में भी उन्होंने अनेक जैन-अजैन महर्षियों के जीवन चरित्र पढे है।

दीक्षा जीवन में भी वे अपन अधिकांश समय स्वाध्याय में ही व्यतीत करते है। उन्होंने अपने श्रमण जीवन में अनेक प्रकरण ग्रंथों को कंठस्थ करने के साथ साथ संस्कृत-प्राकृत भाषों में लाखों श्लोक प्रमाण आगम साहित्य, कर्म साहित्य, प्रकरण साहित्य, आध्यात्मिक साहित्य, ज्योतिष, व्याकरण, न्याय आदि का सुंदर अभ्यास किया है। अजैन विद्वानों के भी जनोपयोगी हितकारी साहित्य का पठन किया है।

(7) समय प्रतिबद्धता :– पूज्यश्री अपने हर कार्य में सदैव नियमित रहते है। किसी भी कार्य के लिए जो समय निश्चित किया हो, वे समय के पूर्व ही तैयार हो जाते है।

(8) मिलनसार वृत्ति :– विहार आदि दरम्यान साधु जीवन में स्व-पर समुदाय, भिन्न भिन्न गच्छ आदि के महात्माओं का मिलन होता है। पूज्यश्री सभी के साथ पूर्ण औचित्य का पालन करते है। इस मिलनसार प्रकृति के कारण वे सर्वत्र आदरणीय बने है।

(9) गुण ग्राहकता :– अन्य किसी के जीवन में रहे गुणों की वे अवश्य अनुमोदना करते है। गुणवान व्यक्ति को देख उनके गुणों के प्रति पूर्ण आदर भाव व्यक्त करते है। निंदा-ईर्ष्या निरर्थक-चर्चा आदि से वे सदैव दूर रहते है। ऐसे अनेकानेक गुणों को पूज्यश्रीने अपने जीवन में आत्मसात् किया है।

(10) पादविहार :– वि.सं. 2033 माघ शुक्ला 13 के शुभ दिन बाली (राज.) की धन्यधरा पर जैन भागवती दीक्षा अंगीकार

करने के बाद पूज्यश्री का पाद विहार-यात्रा प्रारंभ हुई । 47 वर्षों के संयम पर्याय में उन्होंने आज तक 45000 कि.मी. का विहार किया है । राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, कर्णाटक, तामिलनाडू आदि प्रांतों में विहारकर भिन्न भिन्न संघों में चातुर्मास किए है । 65 वर्ष की उम्र में भी उनकी पाद विहार यात्रा सानंद-सोत्साह चल रही है ।

(11) गुरु हृदय में वास – अपने हृदय में गुरु को बिठाना तो भी सरल हैं, परंतु गुरु के हृदय में प्रतिष्ठित होना, यह तो बहुत बडी साधना का ही फल है ।

वि.सं. 2042 की बात है । पूज्यश्री का संयम पर्याय सिर्फ 9 वर्ष का था ।

उस समय पूज्यपाद गच्छाधिपति **आचार्य देव श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** अहमदाबाद-भगवान नगर के टेकरे में विराजमान थे ।

मगसिर सुदी-14 के दिन पूज्यपाद गच्छाधिपतिश्रीजी ने **पू.मु. श्री रत्नसेनविजयजी म.सा.** को कहा, `इस बार तुझे **आ.प्रद्योतनसूरिजी** के साथ **'ज्ञानमंदिर कालूशीनी पोल'** अहमदाबाद में चातुर्मास करना है और प्रवचन की जवाबदारी संभालना है ।

मुनिश्री ने कहा, **'ज्ञान मंदिर मुख्य स्थान है, पट्टक का विवाद भी है । मेरी इतनी हैसियत कहाँ है ?'**

पूज्यपादश्री ने कहा, **'तेरे में कितनी योग्यता हैं, मैं सब जानता हूँ !'** पाटण के के.के. शाह से मेरी बात हो चूकी है व्याख्यान आदि तुझे संभालना है ।

पू.मुनिश्री ने कहा, **'साहेबजी !'**

पूज्यपाद श्री ने कहा, **'तूं क्यों चिंता करता है ! मैं बैठा हूँ न ! तूं तो मेरे हृदय में है ।'**

'तू मारा हैयामां छे ?' परम गुरुदेव श्री के इन शब्दों को सुनकर पूज्य मुनिश्री मौन हो गए । उनका हृदय गद्‌गद हो गया है ।

पूज्यपादश्री की आज्ञा को शिरोधार्य की । वह चातुर्मास खूब आराधना-प्रभावना पूर्वक संपन्न हुआ ।

ऐसे अनेकविध गुणों के स्वामी पूज्यश्री के पावन चरणों में कोटि कोटि वंदना ।

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म. सा. का संक्षिप्त परिचय

गृहस्थ नाम	: राजु (राजमल चोपड़ा)
माता का नाम	: चंपाबाई
पिता का नाम	: छगनराजजी गेनमलजी चोपड़ा
जन्मभूमि	: बाली (राज.)
जन्म तिथि	: भादो सुद-3, संवत् 2014 दि. 16-9-1958
बचपन में धार्मिक अभ्यास	: पंच प्रतिक्रमण-नवस्मरण आदि
ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार	: 18 जून 1974
व्यावहारिक अभ्यास	: 1st year B.Com. (पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज फालना-राज.)
दीक्षा दाता	: पू.पं. श्री हर्षविजयजी गणिवर्य
गुरुदेव	: अध्यात्मयोगी **पू. पंन्यास श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**
दीक्षा दिन	: माघ शुक्ला 13, संवत् 2033 दि. 2-2-1977
समुदाय	: शासन प्रभावक पू.आ. **श्री रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.**
दीक्षा दिन विशेषता	: भारत भर में लगभग 50 ऊपर दीक्षाएँ
108 मुमुक्षु वरघोड़ा	: 9 जनवरी 1977, मुंबई
दीक्षा स्थल	: न्याति नोहरा-बाली राज.
दीक्षा समय उम्र	: 18 वर्ष
बड़ी दीक्षा	: फाल्गुन शुक्ला 12, संवत् 2033
बड़ी दीक्षा स्थल	: घाणेराव (राज.)
प्रथम चातुर्मास	: संवत् 2033 पाटण पू.पं. श्री हर्षविजयजी के सान्निध्य में

◆ **अभ्यास :** प्रकरण, भाष्य, 6 कर्मग्रंथ, कम्मपयडी, पंचसंग्रह, न्याय, काव्य, कोश, संस्कृत-प्राकृत व्याकरण, संस्कृत-प्राकृत साहित्य वाचन, ज्योतिष, आगम वाचन आदि.

◆ **भाषा बोध :** हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी, संस्कृत, प्राकृत, मराठी आदि

◆ **प्रथम प्रवचन प्रारंभ :** फागुन सुदी 14, संवत् 2034 पाटण (गुजरात)

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन प्रारंभ :** बाली संवत् 2038

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन :** बाली (दो बार), पाली (दो बार), रतलाम, अहमदाबाद (ज्ञानमंदिर), पाटण, सुरेन्द्रनगर, रानीगाँव, पिंडवाड़ा, उदयपुर, जामनगर, अहमदाबाद (गिरधरनगर), थाणा, कल्याण, दादर (मुंबई), सायन (मुंबई), धूलिया, कराड़, चिंचवड़, भायंदर, पूना, येरवड़ा, दीपक ज्योति टॉवर, श्रीपाल नगर, कर्जत, भिवंडी (दो बार), कल्याण (दो बार), रोहा, भायंदर, पालीताणा (दो बार) नासिक, बेंगलोर, मैसूर, कोयम्बत्तूर, चैन्नइ, बीजापूर, भायंदर, निगडी ।

◆ **विहार क्षेत्र :** राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्णाटक तामिलनाडू आदि ।

◆ **पादविहार :** लगभग 45,000 कि.मी. ।

◆ **(छ'री पालित संघ में मार्गदर्शन-प्रवचन) :** बरलूट से शत्रुंजय, गोदन से जैसलमेर, वल्लभीपुर से पालीताणा, लुणावा से राणकपुर पंचतीर्थी

◆ **छ'री पालक निश्रादाता :** उदयपुर से केशरियाजी, गिरधरनगर से शंखेश्वर, धूलिया से नेर, कराड़ से कुंभोज, सोलापुर से बार्शी, भिवंडी से महावीर धाम, कर्जत से मानस मंदिर, हस्तगिरि से शत्रुंजय होकर गिरनार, शत्रुंजय बारह गाऊ, सेवाडी से राणकपूर पंचतीर्थी, कोयम्बत्तूर से अव्वलपुंदरी ।

◆ **प्रथम पुस्तक आलेखन :** **''वात्सल्य के महासागर''** वि.सं.संवत् 2038

◆ **अद्यावधि प्रकाशित पुस्तकें :** 236

◆ **शिष्य-प्रशिष्य : स्व. मु. श्री उदयरत्नविजयजी म.,**
स्व. मुनि श्री केवलरत्नविजयजी म., स्व. मुनि श्री कीर्तिरत्नविजयजी म.,
मुनि श्री प्रशांतरत्नविजयजी म., मुनि श्री शालिभद्रविजयजी म.,
मुनि श्री स्थूलभद्रविजयजी म., स्व. मुनि श्री यशोभद्रविजयजी म.,
मुनि श्री विमलपुण्यविजयजी म., मुनि श्री निर्वाणभद्रविजयजी म.

◆ **उपधान निश्रा दाता :** कुर्ला, धुले, येरवडा, आदीश्वर धाम (दो), कर्जत, विक्रोली, मोहना, पालीताणा (दो बार), सेसली, कीर्तिस्तंभ (घाणेराव), नासिक, सुशीलधाम (बेंगलोर), मैसूर, महावीर धाम (मुंबई)

◆ **गणि पदवी :** वैशाख वदी-6, संवत् 2055, दि.7-5-1999 चिंचवड गाँव, पूना.

◆ **पंन्यास पदवी :** कार्तिक वदी-5, संवत् 2061, दि.2-12-2004 श्रीपालनगर, मुंबई.

◆ **आचार्य पदवी :** पोष वदी-1, संवत् 2067, दि.20-1-2011 थाणा ।

इन्द्रिय-पराजय शतकम्

सुच्चिय सूरो सो चेव, पंडिओ तं पसंसिमो निच्चं ।
इंदियचोरेहिं सया, न लुंटिअं जस्स चरणधणं ।।1।।

शब्दार्थ :

सुच्चिय-**वही सच्चा ।**	इंदियचोरेहिं-**इन्द्रिय रूप चोरों के द्वारा ।**
सूरो-**शूरवीर ।**	सया-**सदा ।**
सो चेव-**वही सच्चा ।**	लुंटिअं-**लूटा गया है ।**
पंडिओ-**पंडित ।**	न-**नहीं ।**
तं-**उसीकी ।**	जस्स-**उसीकी ।**
पसंसिमो-**हम प्रशंसा करते हैं ।**	चरणधणं-**चारित्र रूपी धन ।**
निच्चं-**नित्य**	

भावार्थः- वही सच्चा शूरवीर है, वही सच्चा पंडित है और उसी की हम नित्य प्रशंसा करते हैं, जिसका चारित्र रूपी धन इन्द्रिय रूप चोरों के द्वारा नहीं लूटा गया है ।

विवेचनः- दुनिया की नजर में शूरवीर वह कहलाता है जो युद्धभूमि में दुश्मनों को मुंहतोड़ जवाब देता है । उन्हें परास्त कर देता है, उन्हें मौत के मुंह में धकेल देता है । सारांश यह है कि जो शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है, वह शूरवीर कहलाता है ।

परंतु जैन शासन की बात ही न्यारी है । जैन शासन में शूरवीर उसे ही कहा जाता है- जिसका चारित्र रूपी धन लूटा नहीं गया है ।

इंद्रियों को चोर की उपमा दी गई है और चारित्र को धन की उपमा दी गई है ।

जिस प्रकार चोर अवसर प्राप्त कर धन की चोरी किए बिना नहीं रहता है, उसी प्रकार ये इन्द्रियाँ भी अपने चारित्र रूपी धन को चुराने का ही काम करती हैं ।

मोक्षमार्ग की आराधना-साधना करने के लिए पांच इन्द्रियों की अपेक्षा रहती ही है । इन्द्रियों की मदद के बिना मोक्षमार्ग की आराधना भी संभव नहीं है ।

प्रभु के दर्शन करना हो, शास्त्रों का स्वाध्याय करना हो, विहार दरम्यान ईर्या समिति अर्थात् जीवदया का पालन करना हो तो चक्षु इन्द्रिय की अपेक्षा रहती ही है । चक्षु इन्द्रिय के बिना जीवदया का पालन कैसे संभव है ?

जिन-वाणी का श्रवण करना हो, गुरु की आज्ञा को सुनना हो तो कर्णेन्द्रिय की अपेक्षा रहती है, कान के अभाव में व्यक्ति जिनवाणी सुन ही नहीं सकता है ।

प्रभु की स्तुति करनी हो, गुरु की स्तुति करनी हो, किसी को सन्मार्ग की राह बतानी हो तो उसे रसनेन्द्रिय की अपेक्षा रहती है ।

इन इन्द्रियों पर अंकुश हो तो ये ही इन्द्रियाँ चारित्र-धर्म की आराधना में सहायक बनती हैं और इन इन्द्रियों पर अपना अंकुश न हो तो ये ही इन्द्रियाँ अपने चारित्र को मलिन बनाने का ही काम करती हैं ।

इन्द्रियों के पराधीन बननेवाले का चारित्र सुरक्षित कैसे रह सकता है !

संतान के कर्त्तव्य

सच्चा बेटा, माता–पिता के प्रति तीन कर्तव्य अदा करता है–

1. माता–पिता को प्रणाम करना ।
2. माता–पिता की स्वयं सेवा करना ।
3. माता–पिता की संपत्ति दान में देना ।

इस प्रकार माता–पिता की भक्ति करने वाला ही उनके अंतर के आशीर्वाद प्राप्त कर पाता है ।

इंदियचपल तुरंग, दुग्गइमग्गाणु धाविरे निच्चं ।
भाविअभवस्सरूवो, रुंभइ जिणवयणरस्सीहिं ।।2।।

शब्दार्थ :

इंदियचपल-**इन्द्रिय रूपी चपल ।**	भाविअ-**चिंतन किया है ।**
तुरंग-**घोड़े ।**	भवस्सरूवो-**संसार के स्वरूप का ।**
निच्चं-**हमेशा ।**	रुंभइ-**रोकता है ।**
दुग्गइमग्गाणु-**दुर्गति के मार्ग पर ।**	जिणवयणरस्सीहिं-**जिनवचन रूपी**
धाविरे-**दौड़नेवाले हैं ।**	**लगाम के द्वारा ।**

भावार्थः- इन्द्रिय रूपी चपल घोड़े हमेशा दुर्गति के मार्ग पर दौड़ने वाले हैं । जिसने संसार के स्वरूप का चिंतन किया हैं, वह जिनवचन रूपी लगाम के द्वारा इन इन्द्रियों को रोकता है ।

विवेचनः- घोड़े पर सवार हुआ व्यक्ति यदि लगाम को अपने हाथ में रखता हो तो वह अपनी इच्छानुसार घोड़े को ले जा सकता है, परंतु जिस घुड़सवार के हाथ में लगाम नहीं है, उसे तो जिधर घोड़ा जाता हो, उधर ही जाना पड़ता है ।

मानव को प्राप्त इन्द्रियाँ भी अत्यंत ही चपल और चंचल हैं । ***'उत्तराध्ययन सूत्र'*** में भगवान महावीर ने भी इन इन्द्रियों को घोडों की उपमा दी है ।

ये इन्द्रियाँ तो मनुष्य को दुर्गति के गर्त में ही गिरा देने वाली हैं- अर्थात् जो मनुष्य इन इन्द्रियों के अधीन रहकर जीवन जीता है वह अवश्य ही दुर्गति गामी बनता है ।

रसनेन्द्रिय की आसक्ति से 1000 वर्ष तक संयम पालन करने वाले **कंडरीक मुनि** का पतन हो गया ।

स्पर्शनेन्द्रिय की आसक्ति से **संभूति मुनि** ने अपनी संयम साधना को बेचकर स्त्रीरत्न की प्राप्ति का नियाणा कर लिया ।

◆ इन्द्रियों की अधीनता तो महाज्ञानी, तपस्वी और साधकों को भी दुर्गति के द्वार बतला देती है । परंतु जिन महापुरुषों ने जिनागम की वचन रूपी डोरी के द्वारा इन इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया, वे पतन के गर्त से बच गए और अपना आत्मकल्याण भी साध गए ।

इंदियधुत्ताणमहो, तिलतुसमित्तंपि देसु मा पसरं ।
जइ दिन्नो तो नीओ, जत्थ खणो वरिसकोडिसमो ।।3।।

शब्दार्थ :

इंदियधुत्ताणं-**इन्द्रिय रूपी धूर्तों को ।**
अहो-**हे जीव ।**
तिलतुसमित्तं-**लेश मात्र ।**
अपि-**भी ।**
जइ-**यदि ।**
देसु मा-**मत देना ।**
पसरं-**स्थान । (प्रश्रय)**
तो-**तो ।**
दिन्नो-**दिया ।**
नीओ-**प्राप्त होगा ।**
जत्थ-**जहाँ ।**
खणो-**एक क्षण ।**
वरिसकोडिसमो-**करोड़ों वर्षों का दुःख ।**

भावार्थः- हे जीव ! इन्द्रिय रूपी धूर्तों को तुम लेश मात्र भी प्रश्रय मत देना, यदि दिया तो करोड़ों वर्षों का दुःख तेरे सिर पर आ गया, ऐसा समझना ।

विवेचनः- यहाँ इन्द्रियों को धूर्त अर्थात् ठग की उपमा दी गई है । ठग माया-कपट करने में खूब होशियार होता है ।

एक ब्राह्मण बाजार में से एक बकरी खरीदकर उसे अपने कंधों पर उठाकर अपने गाँव की ओर ले जा रहा था ।

बीच मार्ग में ही उसे एक ठग मिला । उस ठग ने कहा, ``अरे भूदेव ! इस कुत्ते को उठाकर आप कहाँ ले जा रहे हो ?''

ब्राह्मण ने सोचा, ``मैंने तो बकरी खरीदी है, उसे यह 'कुत्ता' क्यों बोल रहा है ? कहीं यह कुत्ता तो नहीं है ?'' -सोचकर उसने उस बकरी को पुनःदेखा, फिर बोला, ``अरे ! यह कुत्ता कहां है ? यह तो बकरी है ।''

इतना कहकर ब्राह्मण आगे बढ़ गया ।

थोड़ी ही देर में उस ब्राह्मण को दूसरा ठग मिला । उस ठग ने कहा, ``अरे, पंडितजी ! आप तो अछूत हो गए ! इस कुत्ते की सवारी कब से चालू कर दी है ? आप तो अछूत हो गये !'' ब्राह्मण ने पुनः अपने कंधों पर रही बकरी की ओर देखा और बोला, ``यह कुत्ता कहाँ है- यह तो बकरी ही है ।''

वह ब्राह्मण पुनः आगे बढ़ा । थोड़ी देर बाद उसे तीसरा ठग मिला । उस ठग ने कहा, ``अरे पंडितजी ! इस चांडाल समान अछूत कुत्ते की सवारी कब से चालू कर दी है ?''

``आप के ज्ञातिजन को मालूम पड़ेगा तो आपको ज्ञाति में से बाहर कर देंगे ।''

उस ब्राह्मण ने पुनःउस बकरी को देखा । वह सोचने लगा, ``यह कुत्ता है या बकरी है ?'' ``सभी को कुत्ता लग रहा है तो शायद कुत्ता ही होगा ?'' -सोचकर उस बकरी को कंधों पर से उतारकर वहीं छोड़ दिया और उसी समय वह ठग उस बकरी को लेकर रवाना हो गया ।

जिस प्रकार इन तीन ठगों ने मिलकर उस ब्राह्मण को ठग लिया-इसी प्रकार ये इन्द्रियाँ भी मुमुक्षु- चारित्रधर आत्मा को ठगने का ही काम करती हैं । इन इन्द्रियों से यदि सावधान नहीं रहे तो ये इन्द्रियाँ आत्मा को चारित्र धन को चुराए बिना नहीं रहेंगी ।

संतान के कर्त्तव्य

दीपक और ज्वाला दोनों आग की पैदाश है, परंतु एक प्रकाश फैलाता है और दूसरा विनाश पैदा करती है ।

अपने जीवन को दीपक बनाएँ, ज्वाला नहीं । कुलदीपक बनें, कुलांगार नहीं ।

कुलदीपक कुल की इज्जत में वृद्धि करता है, जब कि कुलांगार प्राप्त इज्जत को ही नष्ट कर देता है ।

अजिइंदिएहि चरणं कट्ठं व घूणेहि कीरइ असारं ।
तो धम्मत्थीहि दढं, जइयव्वं इंदियजयंमि ।।4।।

शब्दार्थ :

अजिइंदिएहि-**इंद्रियों का गुलाम बना व्यक्ति ।**
चरणं-**चारित्र को ।**
कट्ठं-**लकड़े को ।**
व-**वत् उसी प्रकार ।**
घुणेहि-**उधइ के कीड़े ।**
कीरइ-**बना देते हैं ।**
असारं-**खोखला ।**
तो-**अतः ।**
धम्मत्थीहि-**धर्म के अर्थी व्यक्ति को ।**
दढं-**अत्यंत ।**
जइयव्वं-**प्रयत्नशील बनना चाहिए ।**
इंदियजयंमि-**इंद्रियों को जीतने में ।**

भावार्थः- जिस प्रकार उधइ के कीड़े अंदर से कुतरकर लकड़े को खोखला बना देते हैं, उसी प्रकार इंद्रियों का गुलाम बना व्यक्ति अपने चारित्र को खोखला बना लेता है, अतःधर्म के अर्थी व्यक्ति को इंद्रियों को जीतने में प्रयत्नशील बनना चाहिए ।

विवेचनः- लकड़ा कितना ही मजबूत और अच्छा क्यों न हो, परंतु जब उसमें ऊधई लग जाती है, तब वह लकडा धीरे धीरे अंदर से खोखला होने लग जाता है । खोखला बना हुआ वह लकड़ा बाहर से सुंदर लगता है, परंतु अंदर से तो खोखला ही हो गया होता है ।

बस,

मनुष्य को प्राप्त ये पाँच इन्द्रियाँ भी घुण-कीड़े की तरह होती हैं, जो साधु के चारित्र रूपी लकड़े को अंदर से कुतरने का काम करती हैं ।

आत्महित के लिए सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करनी हो अथवा आत्म-विकास के लिए देशविरति या सर्वविरति धर्म प्राप्त करना हो तो उसके लिए इन्द्रियजय खूब जरूरी है । जो इन्द्रियों का गुलाम है, वह सम्यक्त्व भी प्राप्त नहीं कर पाता है तो देशविरति या सर्वविरति धर्म की तो क्या बात करें ।

सद्धर्म की प्राप्ति हेतु इन्द्रियजय खूब-खूब जरूरी है ।

जो इन्द्रियों के अधीन बना, वह चारित्र से भी भ्रष्ट हुआ है ।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि आज तक जिन-जिन त्यागी-

तपस्वी और संयमी आत्माओं का जो अधःपतन हुआ है, उसमें मुख्यतया इन्द्रियों की आसक्ति ही प्रधान रही है ।

इन्द्रियों की आसक्ति ने अच्छे-अच्छे महात्माओं का भी अधःपतन करा दिया है, अतःपूरे प्रयत्न के साथ इन्द्रियजय के लिए अपना प्रयत्न होना चाहिए ।

मानव-भव ही एक ऐसा भव है, जिसमें संपूर्ण इन्द्रियजय हो सकता है, अन्य किसी भव में यह साधना शक्य नहीं है ।

उत्तराध्ययन सूत्र में भी कहा है कि जिस प्रकार ग्वाला गायों का पालन करता है परंतु वह मालिक नहीं बन जाता है, उसी प्रकार जो श्रमण इन्द्रियों के अधीन है वह संयम की अन्य क्रियाओं को करते हुए भी संयम का स्वामी नहीं बन पाता है ।

संतान के कर्त्तव्य

तीर्थंकर परमात्मा भी सिंहासन पर बैठने के पूर्व तीर्थ को नमन करते हैं । इन्द्र भी सिंहासन पर बैठने के पूर्व विरति को नमन करते हैं । दुकान में भी द्वार को नमन करने वाला मानव क्या घर से बाहर निकलने के पूर्व माँ-बाप को नमन करता है ?

जह कागिणीइ हेउं, कोडिं रयणाण हारए कोइ ।
तह तुच्छ विसयगिद्धा, जीवा हारंति सिद्धिसुहं ।।5।।

शब्दार्थ :

जह-**जिस प्रकार ।**	तह-**उसी प्रकार ।**
कागिणीइ-**काकिणी रत्न को ।**	तुच्छ-**तुच्छ ।**
हेउं-**पाने के लिए ।**	विसयगिद्धा-**विषयसुखों में आसक्त बना हुआ ।**
कोडिं-**करोडों ।**	
रयणाण-**रत्नों को ।**	जीवा-**जीव ।**
हारए-**हार जाता है ।**	हारंति-**हार जाता है ।**
कोइ-**कोई मूर्ख व्यक्ति ।**	सिद्धिसुहं-**मोक्षसुख को ।**

भावार्थः- जिस प्रकार कोई मूर्ख व्यक्ति एक काकिणी रत्न को पाने के लिए करोड़ों रत्नों को हार जाता है; उसी प्रकार तुच्छ विषयसुखों में आसक्त बना हुआ जीव मोक्षसुख को हार जाता है ।

विवेचनः- रत्नों की परीक्षा जवेरी ही कर सकता है, सामान्य व्यक्ति नहीं । मूर्ख व्यक्ति रत्न की वास्तविक कीमत नहीं समझ सकता है । मूर्ख व्यक्ति एक तुच्छ वस्तु को पाने के लिए कीमती रत्न देने के लिए तैयार हो जाता है ।

बस, इसी प्रकार संसार के क्षणिक सुखों में आसक्त बनी हुई आत्मा उन सुखों को पाने के लिए, मोक्ष के शाश्वत-अक्षय व अनंत सुख को भी खोने के लिए तैयार हो जाती है ।

मोहाधीन आत्मा को पाँच इन्द्रियों के विषयों में सुख की कल्पना होती है । वह उन इन्द्रियसुखों को प्राप्तकर उसी में राजी होती है । उसे मोक्ष के अक्षय सुख की कल्पना भी नहीं होती है ।

पाँच इन्द्रियों के विषय-सुख, वास्तव में सच्चा सुख नहीं है, वह तो सुखाभास ही है ।

जिस प्रकार मरु भूमि में गर्मी के दिनों में जब गर्म-गर्म हवा चलती है, तब दूर से वहाँ 'नदी वह रही है' -ऐसी भ्रांति होती है, परंतु वहाँ पानी की एक बूंद भी नहीं होती है ।

बस, इसी प्रकार पाँच इन्द्रियों के विषय-सुखों में लेश भी वास्तविक सुख नहीं है, परंतु मोह के नशे में चकचूर बनी आत्मा को उसी में सुख दिखाई देता है ।

मोक्ष का सुख पाँच इन्द्रियों से परोक्ष होने के कारण, उनके द्वारा उस सुख का सही बोध नहीं होता है ।

तिलमित्तं विसयसुहं, दुहं च गिरिराय सिंगतुंगयरं ।
भवकोडीहिं न निट्ठइ जं जाणसु तं करिज्जासु ।।6।।

शब्दार्थ :

तिलमित्तं-**नाममात्र ।**	भवकोडीहिं-**करोडों भवों द्वारा भी ।**
विसयसुहं-**विषयसुख ।**	न निट्ठइ-**अंत आनेवाला नहीं है ।**
दुहं-**दुःख ।**	जं जाणसु-**जो ठीक लगे ।**
गिरिराय-**मेरु पर्वत के ।**	तं करिज्जासु-**वह कर ।**
सिंगतुंगयरं-**शिखर जितना ऊँचा है ।**	

भावार्थः- इन्द्रियों से प्राप्त होने वाला विषयसुख तो नाम मात्र का है जबकि उसके बदले में प्राप्त होने वाला दुःख तो मेरु पर्वत के शिखर जितना ऊँचा है, करोड़ों भवों द्वारा भी उस दुःख का अंत आनेवाला नहीं है, अतः यह जानकर अब तुझे जो ठीक लगे, वह कर !

विवेचनः- पाँच इन्द्रियों के विषयभोगों से जिस सुख की अनुभूति होती है, वह सुख नाम मात्र का होता है क्योंकि वह क्षणिक व नाशवंत होता है ।

भोजन के सुख का स्वाद तभी तक, जब तक वह स्वादिष्ट पदार्थ जीभ के ऊपर रहता है । जीभ से नीचे उतरने के साथ ही वह स्वाद नष्ट हो जाता है ।

जीभ के नीचे उतरने के साथ ही उस Tasteful पदार्थ की जो दुर्दशा होती है, उसका तो क्या वर्णन करें !

जिस पदार्थ को देखते ही मुँह में पानी आ जाता था, अब उसी पदार्थ को दिखते ही आँखें बंद हो जाती हैं, दुर्गंध के कारण नाक बंद कर देना पड़ता है ।

कहाँ गया वह स्वाद ? बस, जीभ से नीचे उतरा और स्वाद समाप्त हो गया !

कर्णेन्द्रिय से प्राप्त होनेवाले, मधुर शब्दों के श्रवण के सुख का आनंद कब तक ? जब तक मन प्रसन्न है ।

आँखों में नींद आ रही हो तो वो ही संगीत कर्कश लगता है, उसे बंद कराने का मन होता है ।

किसी के रूपदर्शन का आनंद कब तक ? उसी समय यदि स्वजन की मृत्यु के समाचार मिल जायें तो उस T.V. पर आनेवाले रूप के दर्शन का आनंद वहीं समाप्त हो जाएगा ।

स्त्रीभोग का आनंद भी क्षणिक है । वही आनंद व्यक्ति को कमजोर बना देता है, Aids आदि रोगों की भेंट दे देता है । तब उसके आनंद का उत्साह समाप्त हो जाता है ।

पाँच इन्द्रियों के जिन अनुकूल विषयभोगों में आनंद आता है, उसी समय आत्मा राग मोहनीय नाम के भयंकर पापकर्म का बंध करती है । उस कर्म के उदय से जीवात्मा को दीर्घ काल तक संसार में भटकना पडता है । नरक आदि गतियों में पल्योपम व सागरोपम जितने काल को प्रसार करने में जीव की हालत कैसी हो जाती है !

इन्द्रियों के विषयभोगों में क्षण की मजा है परंतु सजा खूब लंबी है, जरा, सावधान रहें ।

संतान के कर्त्तव्य

घर का नाम **'मातृछाया'** व **'पितृ छाया'** । मगर उसमें माँ-बाप की परछाई भी न पड़ने दे तो उसका नाम **'पत्नीछाया'** रखना ठीक होगा । बचपन में जिसने तुम्हें पाला, बुढ़ापे में उसको तुमने नहीं सँभाला तो याद रखो...तुम्हारे भाग्य में ज्वाला ही भडकने वाली है ।

भुंजंता महुरा विवाग विरसा, किंपागतुल्ला इमे ।
कच्छूकंडुअणं व दुक्खजणया दाविंति बुद्धिं सुहे ।।7।।
मज्झण्हे मयतिन्हिअव्व सययं, मिच्छाभिसंधिप्पया ।
भुत्ता दिंति कुजम्म जोणिगहणं, भोगा महावेरिणो ।।8।।

शब्दार्थ :

भुंजंता-**भोगते समय ।**
महुरा-**मधुर ।**
विवाग-**विपाक ।**
विरसा-**रस रहित ।**
किंपागतुल्ला-**किंपाक फल के समान ।**
इमे-**इन कामभोगों ।**
कच्छूकंडुअणं-**खाज-खुजली करने पर ।**
व-**परंतु ।**
दुक्खजणया-**दुःख को उत्पन्न करता है ।**
दाविंति-**दिखाता है ।**
बुद्धिं-**बुद्धि ।**
सुहे-**सुख में ।**
मज्झण्हे-**दोपहर में ।**
मियतिण्हि अव्व-**मृमतृष्णा के समान ।**
सययं-**सतत ।**
मिच्छाभिसंधिप्पया-**मिथ्या प्रतारणा ।**
भुत्ता-**भोगने पर ।**
दिंति-**देते हैं ।**
कुजम्म-**खराब जन्म रूप ।**
जोणिगहणं-**योनि ग्रहण करते हैं ।**
भोगा-**भोग ।**
महावेरिणो-**महावैरी ।**

भावार्थः- ये कामभोग भोगते समय मधुर हैं परंतु किंपाक फल की तरह परिणाम में कटु हैं । खुजली के रोगी को खुजलाते समय सुख की बुद्धि होती है, जब कि वह परिणाम में तो दुःख ही देती है ।।7।।

मृगतृष्णा की तरह ये भोग मध्याह्न में अर्थात् यौवन काल में मिथ्यात्व के साथ प्रतारणा करने वाले हैं । भोगने पर ये दुष्ट योनि में ले जानेवाले हैं । यो भाग महावैरी हैं ।।8।।

विवेचनः- जंगल में किंपाक का फल पैदा होता है जो दिखने में आम की तरह सुंदर होता है । स्वाद में भी खूब मीठा होता है और सुगंधित भी होता हैं, परंतु वह फल जहरीला होने से मौत का ही कारण बनता है ।

ग्रंथकार महर्षि पाँच इन्द्रियों के विषयभोगों को किंपाक फल की उपमा देते हुए कहते हैं कि ये विषय भोग दिखने में बड़े आकर्षक लगते हैं, परंतु उनका भोग अत्यंत ही भयंकर है । जो-जो आत्माएँ इन इन्द्रियों के अधीन

बनीं, परिणामस्वरूप उन्हें नरक-तिर्यंच आदि दुर्गतियों में लाखों-करोड़ों वर्षों तक भयंकर यातनाएं सहन करनी पड़ती हैं ।

कौन समझदार होगा जो प्रारंभ में मधुर-सुखदायी और परिणाम में दुःखदायी ऐसे विषय-सुखों का आश्रय लेगा ।

इन्हीं विषयसुखों को दूसरी उपमा देते हुए कहते हैं -**'ये विषयसुख खुजली की भाँति हैं'** जिस प्रकार खुजली के रोगी को खुजलाते समय तो खूब अच्छा लगता है, खुजलाते समय उसे सुख की अनुभूति होती है, परंतु कुछ समय बीतने के बाद तो उसे खूब वेदना ही होती है ।

बस, ये विषय भोग भी खुजली के रोग की भाँति हैं, जो प्रारंभ में बडे मधुर लगते हैं, परंतु जिनका परिणाम अत्यंत ही कटु है ।

खुजली के रोगी को खुजलाते समय इतना आनंद आता है कि वह तीक्ष्ण लकड़ी या चाकू से भी घिसने लग जाता है, परंतु समय बीतने पर उसकी पीड़ा का कोई पार नहीं रहता है । बस, ये विषय भोग भी परिणाम में इतने ही कटु हैं ।

गर्मी के दिनों में मध्याह्न के समय जब गर्म-गर्म हवाएँ चलती हैं, तब दूर रहे व्यक्ति को मरुभूमि में पानी का आभास होता है, जिसे मृगतृष्णा या मृग मरीचिका कहा जाता है । जलपीने के लिए मृग उस ओर दौड़ता है, परंतु जल का मिलना तो दूर रहा, वह श्रम और तृषा के कारण अपने प्राण ही छोड देता है ।

बस, मध्याह्न की तरह यौवन वय में भी मोहाधीन आत्मा को पाँच इन्द्रियों के विषयों का आकर्षण होता है, जिस कारण उसे मिथ्यात्व की बुद्धि पैदा होती है ।

भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है-

''मोहाधीन आत्मा मांस की ग्रंथि समान स्त्रियों के स्तनों को सुवर्ण कलश की उपमा देता है ।

''श्लेष्म के घर ऐसे मुख को चंद्र की उपमा देता है । 'अहो ! इसका मुख तो चंद्र जैसा है ।''

''मूत्र से व्याप्त भाग को हाथी की सूंड की उपमा दी जाती है । सचमुच, निंद्य ऐसे स्त्री के रूप को भी कुकवि कुविकल्पों के द्वारा उसे महान् बना देते हैं ।''

सक्को अग्गी निवारेउं, वारिणा जलिओ वि हु ।
सव्वोदहि जलेणा वि, कामग्गी दुनिवारओ ।।9।।

शब्दार्थ :

सक्को-**सकता है ।**	सव्वोदहि-**सभी समुद्रों के ।**
अग्गी-**अति भयंकर आग को ।**	जलेणावि-**पानी से भी ।**
निवारेउं-**बुझाने के लिए ।**	कामग्गी-**काम रूपी अग्नि को ।**
वारिणा-**पानी द्वारा ।**	दुन्निवारओ-**शांत नहीं किया जा सकता है ।**
जलिओवि-**जलती हुई ।**	

भावार्थः- ***अति भयंकर प्रज्वलित आग को भी पानी द्वारा बुझाया जा सकता है, परंतु सभी समुद्रों के पानी से भी काम रूपी अग्नि को शांत नहीं किया जा सकता है ।***

विवेचनः- लकड़ी या ईंधन द्वारा पैदा होनेवाली आग को पानी से बुझाया जा सकता है, क्योंकि पानी आग का दुश्मन है और आग से भी पानी की शक्ति ज्यादा है, परंतु मन के भीतर जो काम वासना रूपी आग पैदा होती है, उस को बुझाने की ताकत न तो तालाब के पानी में है, न नदी के पानी में है और न ही सागर के पानी में है ।

भयंकर ताप से संतप्त व्यक्ति नदी में डुबकी लगाता है और उसके ताप की पीड़ा शांत हो जाती है, परंतु काम वासना की आग को सागर के पानी से भी शांत नहीं कर सकते हैं ।

कामी व्यक्ति सागर में डुबकी लगाए तो भी उसकी वह कामाग्नि शांत होने के बजाय और अधिक तीव्र ही बनती है ।

काम-भोगों का चाहे जितना भोग किया जाय फिर भी जीवात्मा को कहीं तृप्ति का अनुभव नहीं होता है ।

संतान के कर्त्तव्य

वृद्ध माता-पिता खाने को मिले, उसकी अपेक्षा नहीं रखते, लेकिन पुत्र दिन में कम-से-कम एक बार मिले, उसकी अपेक्षा अवश्य रखते हैं ।

विसमिव मुहंमि महुरा, परिणाम निकाम दारुणा विसया ।
कालमणंतं भुत्ता, अज्ज वि मुत्तुं न किं जुत्ता ।।10।।

शब्दार्थ :

विसमिव-**विषयुक्त भोजन की तरह ।**	विसया-**विषयसुख ।**
मुहंमि-**प्रारम्भ में ।**	कालमणंतं-**अनंतकाल तक ।**
महुरा-**मधुर ।**	भुत्ता-**भोग किया है ।**
परिणाम-**परिणाम में ।**	अज्ज वि-**आज भी वे ।**
निकाम-**अत्यंत ही ।**	मुत्तुं-**छोड़ने ।**
दारुणा-**दारुण ।**	न किं जुत्ता-**योग्य नहीं है ।**

भावार्थ :- विषयुक्त भोजन की तरह ये विषयसुख प्रारंभ में मधुर हैं, परंतु परिणाम में तो अत्यंत ही दारुण हैं । अनंतकाल तक इन विषयसुखों का भोग किया है, तो क्या अब भी वे छोड़ने योग्य नहीं हैं ।

विवेचन :- आपको कड़कड़ाहट की तीव्र भूख लगी हो, भोजन की थाली पर आप बैठ गए हों, आप खाने की तैयारी कर रहे हों, परंतु उसी समय कोई चिल्लाए ``इन पाँच मिष्टान्नों में से एक में जहर है, किस मिष्टान्न में जहर है, यह मुझे पता नहीं है ।''

अच्छा बताओ ! यह सुनने के बाद आप कितने मिष्टान्न खाओगे ?

`एक भी नहीं !'

`ऐसा क्यों ? जहर तो एक ही मिष्टान्न में है न ?'

`जहर तो एक ही मिष्टान्न में है, परंतु यह पता नहीं है कि किसमें जहर है ? कदाचित् जो खाए, उसी में जहर आ गया तो !

समझदार व्यक्ति भूखा रहना या लूखा-सूखा खाना पसंद करेगा, परंतु जहर वाले या जहर की संभावना वाले मिष्टान्न को अपने मुँह में नहीं डालेगा ।

परंतु कुत्तों को मारने के लिए उन्हें जहर के लड्डू डाल दिये जाते हैं तो वे उन्हें बड़े प्रेम से खा लेते हैं ।

कारण ?

उन्हें पता नहीं है । वे मात्र वर्तमान की ओर नजर कर रहे हैं, परिणाम की ओर नहीं ! उसे लड्डू दिखाई दे रहे हैं, परंतु उनके भक्षण के परिणाम-स्वरूप आनेवाली मौत उन्हें नजर में नहीं आ रही है ।

बस, पाँच इन्द्रियों के विषय भोगों को विष मिश्रित मिष्टान्न की उपमा देते हुए ज्ञानी महापुरुष हमें समझाते हैं कि ये विषय सुख विष मिश्रित मिष्टान्न की तरह खाने में मीठे हैं, परंतु इनका परिणाम अच्छा नहीं है ।

विष मिश्रित भोजन करने से एक बार व्यक्ति की भूख शांत होती है, परंतु परिणाम तो भयंकर ही है न !

हे जीव ! तू जरा विचार कर ! देव-मनुष्य-तिर्यंच आदि के अनेक-अनेक भवों में तुझे इन विषय सुखों की प्राप्ति हुई है । जिस भव में जिस इन्द्रिय का जो सुख मिला, उस सुख का तुमने उपभोग किया है- परंतु क्या तुझे उन विषय-सुखों से तृप्ति हुई है ?

नहीं !

ये विषयसुख तृप्ति देने वाले नहीं हैं, अपितु दुर्गति रूपी मौत की सजा ही देनेवाले हैं तो फिर तू उनमें पागल क्यों बनता है ?

विषयों में पागलपन अच्छा नहीं है ।

संतान के कर्त्तव्य

मन्दिर में जाकर **''आपो आपो ने महाराज ! अमने मोक्ष सुख आपो''** बोलने वाला यदि घर में माँ-बाप को दुःखी करता हो, तो उसको मोक्षसुख मिले, इस बात में कोई माल नहीं ।

जन्म देनेवाले माँ-बाप की सेवा करने में जिसको शर्म आती हो, उसको एक दिन पत्नी की सेवा करनी पड़ेगी ।

विसयरसासवमत्तो, जुत्ताजुत्तं न याणइ जीवो ।
झूरइ कलुणं पच्छा, पत्तो नरयं महाघोरं ।।11।।

शब्दार्थ :

विसयरसासवमत्तो-**विषयरस रुपी मदिरा के पान से मदोन्मत्त ।**	कलुणं-**करुण ।**
जुत्ताजुत्तं-**योग्य-अयोग्य ।**	पच्छा-**फिर ।**
न याणइ-**नहीं जानता है ।**	पत्तो-**जाता है (प्राप्त करता है) ।**
जीवो-**जीव ।**	नरयं-**नरक में ।**
झूरइ-**विलाप करता है ।**	महाघोरं-**महाभयंकर ।**

भावार्थः- विषय रस रूपी मदिरा के पान से मदोन्मत्त बना जीव योग्य-अयोग्य कुछ भी नहीं जानता है, फिर महा भयंकर नरक में जाता है और वहाँ करुण विलाप करता है ।

विवेचनः- शराब के नशे में चकचूर व्यक्ति को यह भान नहीं रहता है कि वह क्या कर रहा है ? वह क्या बोल रहा है ?

वह गंदी गटर में पड़ा होता है, फिर भी बोलता है, ``मैं तो डेनलोप की गद्दी पर सोया हुआ हूँ ।''

कोई कुत्ता आकर उसके मुँह में पेशाब कर देता है । उस समय वह कहता है- ``यह तो मैं पेप्सी पी रहा हूँ !''

शराब के नशे में रहे व्यक्ति को कृत्य-अकृत्य का, भक्ष्य-अभक्ष्य का कोई विवेक नहीं होता है । शराब के नशे के साथ ही व्यक्ति के विवेक रूपी चक्षु बंद हो जाते हैं । सही दृष्टिकोण से सोचने के लिए उसके विवेक रूपी चक्षु सदा के लिए बंद हो जाते हैं ।

शराब के नशे से भी ज्यादा भयंकर है- पाँच इन्द्रियों के विषयों का नशा !

पांच इन्द्रियों के सुख का नशा बड़ा भयंकर है । यह नशा जिसे चढ़ा होता है, उसे भी कृत्य-अकृत्य का कोई भान नहीं रहता है ।

◆ रसना के सुख में आसक्त बने कंडरीक मुनि अपने संयम के वेष को भी उतारने के लिए तैयार हो गए ।

◆ मोदक की आसक्ति में तल्लीन बने असाढ़ाभूति मुनि प्रमाद के वशीभूत होकर अपनी लब्धि के द्वारा रूप परावर्तन कर माया पिंड को स्वीकार करने के लिए भी तैयार हो गए ।

◆ सिंह केसरिया मोदक की आसक्ति में डूबे हुए सुव्रत मुनि रात-दिन के विवेक को भी भूल गए ! गोचरी हेतु घर में प्रवेश करते समय `धर्मलाभ' बोलना चाहिए- इसके बाद `सिंह केसरिया'`सिंह केसरिया' करने लग गए ।

◆ सुनंदा के रूप में आसक्त बने रूपसेन के 7-7 भव हो गए । सुनंदा तो उसे नहीं मिल पाई, परंतु सुनंदा के रूप के पागलपन ने उसे 7-7 भवों तक मौत के घाट उतार दिया ।

◆ स्पर्शनेन्द्रिय के सुख में आसक्त बने संभूति मुनि के जीव ने चक्रवर्तीपने का नियाणा कर लिया और उसके फलस्वरूप मरकर 7वीं नरक में चला गया, वहाँ 33-33 सागरोपम की भयंकर यातनाएँ सहन कर रहा है ।

संतान के कर्त्तव्य

श्रवण बनकर तीर्थ-यात्रा न करा सको तो कुछ नहीं लेकिन माता-पिता की जीवनयात्रा कष्टमय न बने, उसका ध्यान अवश्य रखना ।

जिस घर के सदस्यों में संप नहीं, वहाँ रोज भूकम्प आता है । संपत्ति व सुविधा कम हो तो चला लेना लेकिन घर में संप व स्नेह का दीपक नहीं बुझे, उसका विचार अवश्य करना ।

जह निंबडुमुपन्नो, कीडो कडुअं पि मन्नए महुरं ।
तह सिद्धिसुह परुक्खा, संसारदुहं सुहं बिंति ।।12।।

शब्दार्थ :

जह-**जिस प्रकार ।**	तह-**उसी प्रकार ।**
निंबडुमुप्पण्णो-**कड़वे नीम के वृक्ष में पैदा हुआ ।**	सिद्धिसुह-**मोक्ष सुख से ।**
कीडो-**कीड़ा ।**	परुक्खा-**परोक्ष अज्ञानी जीव ।**
कडुअंपि-**कड़वे नीम को भी ।**	संसारदुहं-**संसार के दुःख को ।**
मन्नए-**मानता है ।**	सुहं-**सुखरूप**
महुरं-**मीठा ।**	बिंति-**मान लेता है ।**

भावार्थ : जिस प्रकार कड़वे नीम के वृक्ष में पैदा हुआ कीड़ा कड़वे नीम को भी मीठा मानता है, उसी प्रकार मोक्षसुख से परोक्ष अज्ञानी जीव संसार के दुःख को भी सुख रूप मान लेता है ।

विवेचन : कुए में पैदा हुआ मेंढ़क यही समझता है कि यह दुनिया कुए जितनी ही है । परंतु ज्योंही वह कुए से बाहर निकलता है, तब उसे पता चलता है कि दुनिया कितनी बड़ी है ।

बस, इसी प्रकार जिस संसारी जीव ने मोक्ष सुख को जाना-पहिचाना नहीं है, उस सुख का लेश भी आस्वाद नहीं लिया है, वह तो यही मानता हैं कि पाँच इन्द्रियों के भोग में ही सच्चा सुख है ।

जंगल में पैदा हुआ झील यही मानता है कि `गुड राब से बढ़कर इस दुनिया में कोई ऊँचा पकवान नहीं है ।'

परंतु जब वह गुलाबजामुन का आस्वाद लेता है, तब उसे पता लगता है कि गुलाबजामुन के आगे तो गुड़राब कुछ नहीं है ।

बस, पाँच इन्द्रियों के सुख जिन्हें दुनिया सब कुछ मानती है, वे ही सुख सर्वस्व लगते हैं, परंतु वे ही सुख ज्ञानियों को सुख रूप नहीं किंतु सुखाभास रुप लगते हैं । वास्तव में वहाँ सुख नहीं है, किंतु दुःख ही है ।

मोक्ष में पूर्ण शुद्ध व अक्षय सुख है, परंतु इन्द्रियों के माध्यम से उस सुख का अनुभव नहीं होने के कारण संसारी जीवों को वह सुख परोक्ष ही होता है ।

उस परोक्ष सुख में श्रद्धा होना, उसी की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ होना बहुत ही कठिन है ।

अथिराण चंचलाण य, खणमित्त सुहंकराण पावाणं ।
दुग्गइ निबंधणाणं, विरमसु एआण भोगाणं ।।13।।

शब्दार्थः

अथिराण-**अस्थिर ।**	दुग्गइ-**दुर्गति के ।**
चंचलाण य-**चंचल ।**	निबंधणाणं-**कारणभूत ।**
खणमित्त-**क्षणमात्र ।**	विरमसु-**तू विराम पा ।**
सुहंकराण-**सुख देनेवाले ।**	एआण-**इन ।**
पावाणं-**पाप रूप**	भोगाणं-**विषयसुखों से ।**

भावार्थः- हे जीव ! अस्थिर, चंचल, क्षण मात्र सुख देनेवाले और दुर्गति के कारणभूत इन पापी विषयसुखों से तू विराम पा ।

विवेचनः- पांच इन्द्रियों से प्राप्त होनेवाले विषय सुख अस्थिर हैं, क्योंकि उनका अस्तित्व थोड़े समय के लिए ही है ।

पाँच इन्द्रियों से प्राप्त सुख चंचल हैं, थोड़ी ही देर में नष्ट हो जाने के स्वभाव वाले हैं ।

पाँच इन्द्रियों से प्राप्त होने वाला सुख क्षणिक है, वह सुख थोड़ी ही देर तक रहने वाला है । थोड़ी ही देर बाद वह सुख तो नष्ट हो जाता है या नीरस बन जाता है ।

भूख का दुःख हो तभी संसार के सुख मीठे लगते हैं, परंतु भूख मिट जाने के साथ ही भोजन नीरस लगता है या दुःख का कारण बन जाता है ।

इन सुखों का भोग तो भयंकर दुर्गति का ही कारण बनता है ।

इन्द्रियों का सुख पाने के लिए व्यक्ति को धन की अपेक्षा रहती है और उस धन को कमाने के लिए वह नाना प्रकार के दुःखों को सहन करता है । कदाचित् भाग्य योग से धन मिल भी जाए तो उस धन के रक्षण की चिंता उसे सताती है । धन कमाने के बाद उसके रक्षण की चिंता होती है ।

इस प्रकार धन की आय में भी दुःख है और धन के व्यय में भी दुःख है । हर तरह से दुःख के साधनभूत इस धन को धिक्कार हो ।

पत्ता य कामभोगा सुरेसु असुरेसु तह य मणुएसु ।
न य जीव ! तुज्झ तित्ती, जलणस्स व कट्ठनियरेण ।।14।।

शब्दार्थ :

पत्ता य-**प्राप्त हुए ।**	न य-**नहीं हुई है ।**
काम-भोगा-**काम-भोग सुख ।**	जीव ! तुज्झ-**हे जीव तुझे ।**
सुरेसु-**देव ।**	तित्ती-**तृप्ति ।**
असुरेसु-**दानव ।**	जलणस्स व-**अग्नि ।**
तह य मणुएसु-**और मनुष्य भवों में ।**	कट्ठनियरेण-**काष्ठ समूह से ।**

भावार्थः- हे जीव ! देव- दानव और मनुष्य भवों में तुझे काम-भोग सुख प्राप्त हुए, परंतु जिस प्रकार काष्ठ समूह से अग्नि तृप्त नहीं होती है, उसी प्रकार उन सुखों से भी तुझे तृप्ति नहीं हुई है ।

विवेचनः- आग में कितना ही ईंधन डाला जाय परंतु क्या आग उस ईंधन से तृप्त होती है ? कदापि नहीं । वह आग तो उस समस्त ईंधन को भस्मीभूत कर देती है और सदैव अतृप्त ही रहती है ।

बस, इसी प्रकार इस जीव को संसार के भोग-सुखों से, पाँच इन्द्रियों के विषय-सुखों से कभी भी तृप्ति होनेवाली नहीं है ।

हजारों मुर्दों को जलाने पर भी श्मशान कभी तृप्त नहीं होता है ।

हजारों नदियों के जलप्रवाह के आगमन से भी सागर कभी तृप्त नहीं होता है ।

प्रतिदिन भोजन करने पर भी कभी क्षुधा-तृप्ति नहीं होती है ।

बस, इसी प्रकार देव-मनुष्य व तिर्यंच गति में यह जीवात्मा चाहे जितने भोग, भोग ले, फिर भी उसे कभी पूर्ण तृप्ति-पूर्ण संतोष नहीं होता है ।

देवलोक में लाखों करोड़ों-अरबों वर्ष पल्योपम और सागरोपम जितने वर्षों तक विषयभोग करने पर भी जीवात्मा को कभी तृप्ति नहीं हुई है तो क्या मानव भव के 25-50 वर्षों के विषयभोगों से जीवात्मा को तृप्ति हो जानेवाली है ? कदापि नहीं ।

तो फिर उन सुखों में पागल बनने की क्या आवश्यकता है ?

सच्चा सुख तो उन विषयों के भोगों से नहीं, बल्कि उन विषयों के त्याग से ही प्राप्त होनेवाला है ।

अतः भोग के बजाय त्याग हेतु ही अपना प्रयत्न व पुरुषार्थ होना चाहिए ।

जहा य किंपागफला मणोरमा, रसेण वन्नेण य भुंजमाणा ।
ते खुड्डए जीविय पच्चमाणा, एवमा कामगुणा विवागे ।।15।।

शब्दार्थ :

जहा य-**जिस प्रकार ।**	ते खुट्टए-**नाश करता है ।**
किंपागफला-**किंपाक का फल ।**	जीविय-**प्राणों का ।**
मणोरमा-**मन को आकर्षित करता है ।**	पच्चमाणा-**पचने पर ।**
रसेण-**स्वाद ।**	एओवमा-**उसी प्रकार ।**
वन्नेण य-**और रंग से ।**	कामगुणा-**कामभोग भी ।**
भुंजमाणा-**खानेवाले के ।**	विवागे-**विपाकवाले ।**

भावार्थः- जिस प्रकार किंपाक का फल स्वाद और रंग से मन को आकर्षित करने वाला होता है, परंतु खाने के बाद पचने पर प्राणों का नाश करता है, उसी प्रकार कामभोग भी परिणाम में इसी विपाक वाले हैं ।

विवेचनः- शास्त्रों में किंपाक फल का वर्णन आता है, जो दिखने में बड़ा सुंदर होता है, उसका रूप रंग आकर्षक होता है । उसका स्वाद भी बड़ा मीठा होता है परंतु वह जहरीला होता है ।

भूल से भी या उसके प्रति मोहित होकर जो यह फल खा लेता है, उसे प्रारंभ में तो मधुर स्वाद के कारण आनंद आता है, परंतु जब वह फल पेट में जाता है और अपने तीव्र विष के कारण आँतों को तोड़ डालता है, तब भयंकर पीड़ा का अनुभव होता है और अंत में जीवात्मा को बेमौत मरना ही पड़ता है ।

बस, पाँच इन्द्रियों के विषय भोग भी किंपाक फल की उपमा वाले हैं अर्थात् प्रारंभ में सुखदायी हैं; परंतु परिणाम में भयंकर नरकादि दुर्गति को ही देनेवाले हैं, ऐसे क्षणिक व तुच्छ कामभोगों में आसक्त बनना सिर्फ मूर्खता ही है ।

Express Highway के मार्ग पर हरे घास का पूला देखकर गाय या भैंस तुरंत ही उसे खाने के लिए उस ओर भागने की कोशिश करती है, उसे मात्र घास दिखाई देता है परंतु उसके परिणाम स्वरूप होनेवाली मौत उसे दिखाई नहीं देती है । उसकी नजर मात्र वर्तमान पर है, परिणाम पर नहीं ।

Express Highway के मार्ग पर 1000 रु. की नोट पड़ी हो तो थोड़ा

समझदार व्यक्ति इधर-उधर से आनेवाली गाड़ी को देखेगा और बड़ी सावधानी से उस नोट को उठाएगा ।

जो ज्यादा समझदार है, वह तो मार्ग में पड़ी नोट को उठाने की कोशिश ही नहीं करेगा, क्योंकि यह भी एक प्रकार की चोरी है । बिना हक की वस्तु को उठाने का हमें कोई अधिकार नहीं है । उससे पाप का बंध होता है, अतः दुर्गति के भय से वह नोट नहीं उठाएगा ।

पशु मात्र वर्तमान का विचार करता है । लोभी मात्र वर्तमान का विचार करता है और धर्मी मात्र इस जीवन का ही नहीं, परलोक का भी विचार करता है ।

मात्र वर्तमान का विचार करना और परिणाम की उपेक्षा करना पशुता या मूर्खता ही है ।

पाँच इन्द्रियों के विषयभोगों में लुब्ध बननेवाला पशु या लुब्ध ही है । उसे परिणाम का विचार नहीं आता है ।

◆ स्पर्शनेन्द्रिय में लुब्ध बने संभूति मुनि ने चारित्र धर्म के फलस्वरूप स्त्रीरत्न पाने का नियाणा किया-परिणामस्वरूप वे चक्रवर्ती तो बने, परंतु चक्रवर्ती बनकर 7वीं नरक में चले गये ।

यहाँ पाँच इन्द्रियों के विषयभोगों का सेवन मुश्किल से 700 वर्ष तक कर पाये और परिणामस्वरूप उन्हें 33 सागरोपम तक 7वीं नरक की भयंकर वेदना प्राप्त हुई ।

यह कैसी मूर्खता !

सुख का भोग क्षण भर के लिए और उसकी सजा पल्योपम और सागरोपम जितनी !

संतान के कर्त्तव्य

माँ-बाप को सोने से न मढ़ो तो चलेगा । हीरे से न जड़ो तो चलेगा । पर उनका जिगर जले और अंतर आँसू बहाए, यह कैसे चलेगा ?

सव्वे विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडंबणा ।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ।।16।।

शब्दार्थ :

सव्वे-**सभी प्रकार का ।**	सव्वे-**सभी प्रकार के ।**
विलवियं-**विलाप तुल्य है ।**	आभरणा-**आभूषण ।**
गीयं-**संगीत ।**	भारा-**भार समान है ।**
सव्वं नट्टं-**सभी प्रकार का नाटक ।**	सव्वे कामा-**सभी प्रकार के कामसुख ।**
विडंबणा-**विडंबना ।**	दुहावहा-**दुःख को लानेवाले हैं ।**

भावार्थः- सभी प्रकार का संगीत विलाप तुल्य है, सभी प्रकार का नाटक विडंबना ही है, सभी प्रकार के आभूषण भार समान हैं और सभी प्रकार के काम सुख दुःख को लानेवाले हैं ।

विवेचनः- संगीत और विलाप में फर्क है । जिसका श्रवण कान को आनंद देता है, उसे संगीत कहते हैं और जिसका श्रवण कान को दुःख देता है, उसे विलाप कहते हैं । संगीत सुखदायी है और विलाप दुःखदायी है, परंतु ज्ञानी महापुरुष अपने अनुभव से कहते हैं कि जो भी मधुर संगीत है, वह भी करुण विलाप तुल्य ही है, क्योंकि उसके श्रवण में पाप का बंध है और उस पाप के उदय में भयंकर दुःख ही है ।

आँखों को पसंद जितने भी नाटक हैं, वे भी विडंबना स्वरूप ही हैं, क्योंकि उन नाटकों को देखने में जो क्षणिक आनंद है, उन नाटकों को देख जो कर्म बंध होता है, उसका विपाक तो दुःखदायी ही होता है, अतः सुंदर नाटक और नाच-गान भी आत्मा के लिए भयंकर विडंबना रूप ही हैं ।

सोने-चांदी व रत्नों के अलंकार पहिनकर अज्ञानी व्यक्ति खुश होता है, परंतु ज्ञानियों की दृष्टि में तो वे सब अलंकार पत्थर के भार स्वरूप ही हैं, क्योंकि उनका परिणाम सुंदर नहीं है ।

इसी प्रकार सभी इन्द्रियों के विषय सुख परिणाम में तो दुःख को ही लाने वाले हैं, अतः कौन समझदार व्यक्ति उन इन्द्रियों के विषय-सुखों में पागल बनेगा ? अर्थात् कोई नहीं !

देविंद चक्कवट्टित्तणाइ रज्जाइ उत्तमा भोगा ।
पत्ता अणंतखुत्तो, न य हं तत्तिं गओ तेहिं ।।17।।

शब्दार्थ :

देविंद-**देवेन्द्र ।**	पत्ता-**प्राप्त किये हैं ।**
चक्कवट्टित्तणाइ-**चक्रवर्ती और ।**	अणंतखुत्तो-**अनंतबार ।**
रज्जाइ-**राज्य के ।**	न य हं-**परंतु मुझे नहीं ।**
उत्तमा-**उत्तम ।**	तत्तिं गओ-**तृप्ति हुई है ।**
भोगा-**भोग ।**	तेहिं-**इनसे ।**

भावार्थ:- देवेन्द्र और चक्रवर्ती पद और राज्य के उत्तम भोग अनंतबार प्राप्त किये हैं, परंतु इनसे मुझे कभी तृप्ति नहीं हुई है ।

विवेचन:- अनादि काल से इस संसार में भटक रही आत्मा ने संसार के कौन से भौतिक सुख प्राप्त नहीं किए हैं ।

इस आत्मा ने भूतकाल में अनंत बार मनुष्य का भव प्राप्त किया है तो उसमें वह राजा भी बनी है । राजा बनने पर अनेक प्रकार के भौतिक सुखों का भोग किया है ।

इस आत्मा ने अनंत बार देवभव प्राप्त किया है, उस समय देवलोक के दिव्य सुखों का भी भोग किया है ।

कभी-कभी यह आत्मा चक्रवर्ती व इन्द्र भी बना है । चक्रवर्ती के भव में मनुष्य के सर्वोच्च सुखों को प्राप्त किया है तो इन्द्र के भव में देवलोक के सभी सुखों को प्राप्त किया है, परंतु उन सब सुखों से भी आत्मा को तृप्ति कहाँ हुई है ?

समुद्र का खारा पानी कितना ही पीया जाय क्या उससे व्यक्ति की प्यास बुझ सकती है ? कदापि नहीं ! बस, इसी प्रकार संसार के संर्वोच्च भौतिक सुखों का भी चाहे जितना भोग किया जाय परंतु उससे आत्मा को कभी तृप्ति मिलने वाली नहीं है ।

अपनी आत्मा भुवनपति, व्यंतर-ज्योतिष और वैमानिक देवलोक में, नौवें ग्रैवेयक तक अनेक बार गई है । दीर्घ काल तक उन दिव्य सुखों का भोग किया है, परंतु अभी तक जीवात्मा को उससे तृप्ति को अनुभव नहीं हुआ है ।

संसार चक्कवाले सव्वे वि अ पुग्गला मए बहुसो ।
आहरियाय परिणामिआय न य तेसु तत्तोहं ।।18।।

शब्दार्थ :

संसार चक्कवाले-**संसार रुपी चक्र-वाल में ।**	आहारिआय-**औदारिक आदि के रूप में ग्रहण किया है ।**
सव्वे वि अ-**सभी ।**	न य तेसु-**फिर भी उनसे ।**
पुग्गला-**पुद्गलों को ।**	तत्तोहं-**मैं तृप्त नहीं हुआ हूँ ।**
मए-**मैंने ।**	परिणामिआ य-**औदारिक आदि के रूप में भोगा है ।**
बहुसो-**बहुतबार ।**	

भावार्थ:- संसार रूपी चक्रवाल में मैंने सभी पुद्गलों को औदारिक आदि के रूप में ग्रहण किया है और औदारिक आदि के रूप में भोगा है, फिर भी मैं उनसे तृप्त नहीं हुआ हूँ ।

विवेचन:- इस संसार में आत्मा अनादि काल से है । जो आत्मा व्यवहार राशि में आ चुकी है, वह आत्मा एक पुद्गल-परावर्त काल में, इस जगत् में रहे सभी पुद्गलों का उपभोग कर लेती है ।

इस चौदह राजलोक रूप संसार में जो पुद्गल की वर्गणाएँ हैं, उनके स्वरूप समय-समय पर बदलते रहते हैं । औदारिक वर्गणा के पुद्गल, वैक्रिय वर्गणा में बदल जाते हैं और वैक्रिय वर्गणा के पुद्गल औदारिक-आहारक आदि में बदल जाते हैं । काल के प्रवाह के साथ आत्मा उन सभी पुद्गलों का क्रमशः उपभोग करती है ।

एक मात्र आहारक वर्गणा के रूप में आत्मा सभी पुद्गलों का भोग नहीं करती है, क्योंकि आहारक शरीर, सम्यग्दृष्टि-सर्वविरति गुणस्थानक पर रहे हुए चौदह पूर्वधर आहारक लब्धिधारी ही बना सकते हैं ।

आहारक लब्धि की प्राप्ति सम्यग्दृष्टि को ही हो सकती है और सम्यग्दृष्टि आत्मा का इस संसार में परिभ्रमण अर्धपुद्गल परावर्त काल से अधिक नहीं होता है, अतः आत्मा, आहारक शरीर के रूप में सभी पुद्गलों का परिभोग कभी नहीं करती है ।

आहारक शरीर को छोड़ अन्य सभी औदारिक आदि वर्गणा के रूप में चौदह राजलोक में रहे सभी पुद्गलों का परिभोग एक पुद्गल परावर्त काल में कर लेती है ।

इस प्रकार जगत् में रहे सभी पुद्गलों का उपभोग कर लेने के बाद भी आत्मा को इस संसार में कभी पूर्ण तृप्ति का अनुभव नहीं हो पाया है ।

उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी नोवलिप्पइ ।
भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चइ ।।19।।

शब्दार्थ :

उवलेवो-**कर्म का बंध ।**	भोगी-**भोगी जीव ।**
होइ-**होता है ।**	भमइ-**भटकता है ।**
भोगेसु-**विषय भोग करनेवाले ।**	संसारे-**संसार में ।**
अभोगी-**अभोगी जीव ।**	अभोगी-**अभोगी जीव ।**
नोवलिप्पइ-**लिप्त नहीं होता है ।**	विप्पमुच्चइ-**मुक्त होता है ।**

भावार्थ:- विषय भोग करनेवाले जीव को कर्म का बंध होता है, जो जीव विषयों का भोग नहीं करता है, वह कर्म के बंध से लिप्त नहीं होता है । भोगी जीव संसार में भटकता है और अभोगी जीव कर्म से मुक्त होता है ।

विवेचन:- जहाँ राग द्वेष है, वहाँ कर्मबंध है । पाँच इन्द्रियों के भोग की प्रवृत्ति राग के बिना नहीं होती है, अतः जहाँ-जहाँ पाँच इन्द्रियों के विषयों का भोग है, वहाँ-वहाँ कर्म का बंध अवश्य होता है ।

कर्म के बंध के कारण ही आत्मा इस संसार में भटकती है, अतः आत्मा को संसार के परिभ्रमण से मुक्त करना हो तो विषयों के भोग का त्याग करना बहुत ही जरूरी है ।

जो आत्मा पाँच इन्द्रियों की विजेता बनती है, वह आत्मा संसार-परिभ्रमण से जल्दी मुक्त हो जाती है और जो आत्मा इन्द्रियों की गुलाम बनकर पांच इन्द्रियों के विषयों का परिभोग करती रहती है, वह आत्मा इस संसार में चार गतियों के चक्कर में भटकती रहती है ।

संतान के कर्त्तव्य

घर में वृद्ध माता-पिता की संभाल नहीं रखें और वृद्धाश्रम में दान देवे, जीवदया में रुपए लिखावे व जीवदयाप्रेमी बनने का दिखावा करे, तो यह जीवदया का घोर अपमान ही है ।

अल्लो सुक्को य दो छूढा, गोलया मट्टियामया ।
दो वि आवडिआ कूडे, जो अल्लो सो विलग्गइ ।।20।।
एवं लग्गंति दुम्मेहा, जे नरा कामलालसा ।
विस्ता उ न लग्गंति, जहा सुक्के अ गोलए ।।21।।

शब्दार्थ :

अल्लो-**गीला ।**	लग्गंति-**स्त्री आदि में लिपट जाते हैं ।**
सुक्को य-**और सूखा ।**	दुम्मेहा-**दुर्बुद्धिवाले ।**
दो छूढा-**दो फेंका गया ।**	जे नरा-**जो मनुष्य ।**
गोलया-**गोले को ।**	कामलालसा-**काम की लालसा ।**
मट्टियामया-**मिट्टी के ।**	विस्ता-**कामभोगों में विरक्त होते हैं ।**
दो वि-**दोनों भी ।**	उ न-**नहीं होते हैं ।**
आवडिआ कूडे-**दीवार पर फेंका हुआ ।**	लग्गंति-**स्त्री आदि में लिप्त ।**
जो अल्लो-**जो गीला था ।**	जहा-**तरह ।**
सो विलग्गइ-**वह चिपक गया ।**	सुक्के-**शुष्क ।**
एवं-**इसी प्रकार ।**	अ गोलए-**गोले की ।**

भावार्थः- मिट्टी के गीले और सूखे दो गोलों को दीवार पर फेंका गया, जो गीला था, वह दीवार पर चिपक गया और जो सूखा था, वह नहीं चिपका । इसी प्रकार दुर्बुद्धिवाले जो मनुष्य काम की लालसा वाले होते हैं, वे स्त्री आदि में लिपट जाते हैं और जो काम-भोगों से विरक्त होते हैं, वे शुष्क गोले की तरह स्त्री आदि में लिप्त नहीं होते हैं ।

विवेचनः- एक गीली मिट्टी का गोला हो और एक सूखी मिट्टी का गोला हो, उन दोनों को दीवार पर फेंकेंगे तो जो गीला गोला है, वह दीवार पर चिपक जाएगा और जो सूखा गोला है, वह ऐसे ही नीचे गिर जाएगा ।

बस, इसी प्रकार पाप या मलिन बुद्धि के कारण जो पाँच इन्द्रियों के विषयभोगों में आसक्त है, वह धन-पुत्र-स्त्री-परिवार आदि में आसक्त बनता है, जिसके फलस्वरूप उसकी आत्मा कर्म के बंध से लिप्त होती है और उसी कर्मलेप के कारण वह आत्मा चार गति रूप इस संसार में चारों ओर भटकती रहती है ।

परंतु जो आत्मा पाँच इन्द्रियों के कामभोगों के सुखों में आसक्त नहीं है उस आत्मा को धन-स्त्री-पुत्र-परिवार में ज्यादा आसक्ति नहीं होती है,

जिसके फल-स्वरूप वह आत्मा ज्यादा कर्मबंध नहीं करती है । अतः वह आत्मा संसार में नहीं भटकती है ।

आत्मा के संसार परिभ्रमण के मुख्य हेतु राग-द्वेष ही हैं ।

राग-द्वेष में भी राग ही ज्यादा खतरनाक है ।

काटनेवाले कुत्ते दो प्रकार के होते हैं- एक कुत्ता पहले भोंकता है और फिर काटता है । जब कि दूसरा कुत्ता बिल्कुल भोंकता नहीं है और चुपके से आकर काट लेता है । इन दोनों प्रकार के कुत्तों में जो चुपके से आकर काट लेता है, वह ज्यादा खतरनाक है ।

क्योंकि भोंककर काटने वाले कुत्ते से हम सावधान हो सकते हैं, परंतु जो बिल्कुल भोंकता नहीं है और चुपके से आकर काट लेता है, उससे सावधान होना बहुत मुश्किल है ।

अनंत ज्ञानियों ने द्वेष, को भोंककर काटनेवाले कुत्ते की उपमा दी है, जबकि राग तो चुपके से आकर काटनेवाले कुत्ते की तरह है ।

द्वेष के प्रसंग में व्यक्ति सावधान हो सकता है, परंतु राग के प्रसंग में सावधान होना बहुत मुश्किल है ।

द्वेष से भी राग ज्यादा खतरनाक है, क्योंकि द्वेष को पैदा करनेवाला भी राग ही है । जीवन में राग होगा तो द्वेष पैदा ही होने वाला है । अनुकूल वस्तु पर राग होगा तो इसका अर्थ है- प्रतिकूल वस्तु पर आपको द्वेष होगा ही ।

राग के अभाव में द्वेष ठहर नहीं सकता है ।

परमात्मा का एक नाम **'वीतराग'** भी है । वीतराग अर्थात् राग से जो सर्वथा मुक्त हुए हैं । जो राग से मुक्त होगा, वह द्वेष से भी सर्वथा मुक्त होगा ही ।

संतान के कर्त्तव्य

आज तू जो कुछ भी है, वह माँ की बदौलत है, क्योंकि उसने तुझे जन्म दिया । माँ तो देवी है, गर्भपात कराकर राक्षसी नहीं बनी, इतना तो विचार कर ।

तणकट्ठेहिं व अग्गी, लवणसमुद्दो नई सहस्सेहिं ।
न इमो जीवो सक्को, तिप्पेउं कामभोगेहिं ।।22।।

शब्दार्थ :

तणकट्ठेहिव-**तृण और काष्ठ द्वारा ।**	न इमो-**यह नहीं ।**
अग्गी-**अग्नि ।**	जीवो-**जीव ।**
लवणसमुद्दो-**लवणसमुद्र ।**	सक्को-**हो सकता है ।**
नई-**नदियों द्वारा ।**	तिप्पेउं-**तृप्त ।**
सहस्सेहिं-**हजारों ।**	कामभोगेहिं-**कामभोगों द्वारा ।**

भावार्थ:- जिस प्रकार तृण और काष्ठ द्वारा अग्नि तथा हजारों नदियों द्वारा लवण समुद्र कभी तृप्त नहीं होता है, उसी प्रकार कामभोगों द्वारा यह जीव कभी तृप्त नहीं हो सकता है ।

विवेचन:- जलती आग में कितना ही ईंधन क्यों न डाला जाय, वह आग उस समस्त ईंधन को जलाकर भस्मीभूत कर देती है । लाखों क्विंटल लकड़ियों के ढेर को भी आग थोड़ी ही देर में राख बना देती है ।

आग में ईंधन डालने से आग कभी शांत नहीं होती है, बल्कि वह बढ़ती जाती है । बस, इसी प्रकार विषयभोगों द्वारा इस जीव को कभी भी तृप्त नहीं किया जा सकता है । ज्यों-ज्यों विषयों का भोग करते जाते हैं, त्यों-त्यों जीवात्मा को विषयों की भूख बढ़ती ही जाती है ।

जंबुद्वीप के भरत. ऐरावत, महाविदेह, हिमवंत, हिरण्यवंत, हरिवर्ष और रुक्मी आदि क्षेत्रों से हजारों नदियाँ विशाल जल प्रपात के साथ लवण-समुद्र में गिरती है- इतना-इतना पानी निरंतर आने पर भी वह लवणसमुद्र जल से कभी तृप्त नहीं होता है । बस, इसी प्रकार यह आत्मा भी कितने ही प्रमाण में विषयों का भोग करती जाय, वह कभी भी परमतृप्ति का अनुभव नहीं करती है ।

भुत्तूण वि भोगसुहं, सुर नर-खयरेसु पुण पमाएणं ।
पिज्जइ-नरएसु भेरव, कलकल तउ तंबपाणाइं ।।23।।

शब्दार्थ :

भुत्तूण वि-**भोगता है ।**	पिज्जइ-**पान करना पड़ता है ।**
भोगसुहं-**भोगसुखों को ।**	नरएसु-**नरक में ।**
सुर नर-**देव मनुष्य ।**	भेरव-**भयंकर ।**
खयरेसु-**विद्याधरपने में ।**	कलकल-**उबलते हुए ।**
पुण-**और ।**	तउ-**सीसे और ।**
पमाएणं-**प्रमाद से ।**	तंबपाणाइं-**तांबे के रस का ।**

भावार्थः- प्रमाद से आसक्त होकर देव, मनुष्य और विद्याधर पने में अनेक प्रकार के भोगसुखों को भोगता है, जिसके परिणाम स्वरूप इस जीव को नरक में उबलते हुए भयंकर सीसे और तांबे के रस का पान करना पड़ता है ।

विवेचनः- कर्म का गणित बड़ा विचित्र है । यहाँ जीवात्मा जितना मजा करता है, कर्म सत्ता उसे उतनी ही भयंकर सजा करती है ।

◆ श्रेणिक राजा ने गर्भवती हिरणी का शिकार कर क्षण भर के लिए मौज मानी, परंतु उसके फलस्वरूप उसे 84000 वर्ष तक नरक की भयंकर यातनाएँ सहन करनी पड़ी !

◆ जीवात्मा को जो भव मिला और उसमें जो भोग-सुख मिले, उन सबका उसने खूब रागपूर्वक भोग ही किया ।

यह जीव कभी देव बना, तो देवभव के भोगसुखों में आसक्त बना ।

यह जीव कभी मनुष्य बना तो मनुष्यभव के सुखों में आसक्त बना ।

यह जीव कभी विद्याधर बना तो उस भव में प्राप्त भोग-सुखों में आसक्त बना ।

उन सुखों का खूब आसक्तिपूर्वक भोग किया, परंतु उसका परिणाम भी कितना भयंकर आया ।

उन सुखों को भोगकर यह जीव नरक में गया । वहाँ पर परमाधामी देवों ने उसे गर्मागर्म उबलता हुआ तांबे और सीसे का रस पिलाया ।

सुखों के भोग में जो आनंद माना, उससे अनेक गुणा दुःख उसके भाग्य में चोंट गया ।

को लोभेण न निहओ, कस्स न रमणीहिं भोलिअं हिअयं ।
को मच्चुणा न गहिओ, को गिद्धो नेव विसएहिं ।।24।।

शब्दार्थ :

को-**कौन ।**	को-**किसका ।**
लोभेण-**लोभ द्वारा ।**	मच्चुणा-**मृत्यु के द्वारा ।**
निहओ-**नहीं मारा गया ।**	न गहिओ-**ग्रहण नहीं हुआ है ।**
कस्स-**किसका ।**	को गिद्धो-**कौन गृद्ध ।**
न रमणीहिं-**स्त्रियों के द्वारा नहीं ।**	नेव-**नहीं बना ।**
भोलिअं-**ठगा गया है ।**	विसएहिं-**विषयों में ।**
हिअयं-**हृदय ।**	

भावार्थ:- इस जगत् में लोभ द्वारा कौन नहीं मारा गया ! स्त्रियों के द्वारा किसका हृदय न ठगा गया ! मृत्यु के द्वारा किसका ग्रहण नहीं हुआ और विषयों में कौन गृद्ध नहीं बना !

विवेचन:- इस संसार में सभी प्राणी लोभ कषाय से ग्रस्त हैं । मनुष्य को तो धन आदि प्राप्ति का लोभ है ही, परंतु देवलोक में रहे देवता भी इस लोभ कषाय से ग्रस्त हैं । जन्म से ही अमाप संपत्ति प्राप्त होने पर भी वह उन्हें कम ही लगती है ।

इस संसार में ऐसा कौन सा प्राणी है, जिस पर मृत्यु का शासन नहीं है । संसार के सभी जीव मृत्यु के अधीन हैं । एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के सभी प्राणी मृत्यु के से ग्रस्त हैं अर्थात् देवलोक में रहे इन्द्र को भी एक दिन अवश्य मौत का शिकार होना पड़ता है । मृत्यु से कोई बचा नहीं है ।

संसार में शायद ही कोई पुरुष होगा जिसका हृदय स्त्री के द्वारा बींधा हुआ न हो अर्थात् युद्ध में लाखों दुश्मनों को मौत के घाट उतारने वाला भी स्त्री के आगे हार खा जाता है अर्थात् पुरुष स्त्री के आगे कमजोर सिद्ध हो जाता है ।

◆ पाँच इन्द्रियों से गृद्ध (आसक्त) कौन नहीं है ? ये पाँच इन्द्रियाँ संसारी जीवों को अपने वश करती हैं ।

खणमित्त सुक्खा, बहुकाल दुक्खा, पगाम दुक्खा अनिकाम सुक्खा ।
संसारमोक्खस्स विपक्ख भूआ, खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ।।25।।

शब्दार्थ :

खणमित्त-**क्षणमात्र ।**	सुक्खा-**सुख देनेवाले हैं ।**
सुक्खा-**संसार के कामसुख सुख देने-वाले हैं ।**	संसार-**संसार से ।**
बहुकाल-**दीर्घकाल तक ।**	मुक्खस्स-**मुक्त होने में ।**
पगाम-**अत्यंत ।**	विपक्ख भूआ-**दुश्मन समान ।**
दुक्खा-**दुःख देनेवाले हैं ।**	खाणी-**खाण ।**
अनिकाम-**अल्प ।**	अणत्थाण उ-**अनर्थों की ।**
	कामभोगा-**सारे कामभोग ।**

भावार्थः- संसार के काम-सुख क्षण मात्र सुख देनेवाले हैं और दीर्घ काल तक दुःख देनेवाले हैं । जो क्षण अत्यंत दुःख देनेवाले हैं और अल्प सुख देनेवाले है । संसार से मुक्त होने में दुश्मन समान- ये सारे काम-भोग अनर्थों की खान ही हैं ।

विवेचनः- पाँच इन्द्रियों के विषयभोग में जो सुख मिलता है, वह क्षण मात्र के लिए है, क्योंकि इनका अस्तित्व भी अल्पकाल के लिए ही है । जबकि इन्हीं सुखों के भोग से जीवात्मा को दीर्घ काल तक इस संसार में भयंकर दुःख सहन करने पड़ते हैं ।

देवलोक और मनुष्य के सुख तो थोड़े समय के लिए हैं; परंतु उसके फलस्वरुप नरक व तिर्यंच गति में जीवात्मा को दीर्घकाल तक भटकना पड़ता है अर्थात् ये सुख जीवात्मा को दीर्घकाल तक और अत्यंत प्रमाण में दुःख देनेवाले हैं ।

उन सुखों में संतोष का सुख तो है ही नहीं ।

ये सभी काम-सुख अनर्थ की ही खान हैं । कोयले की खान में से कोयला ही निकलता है तो लोहे की खान में से लोहा ही निकलता है । बस, इसी प्रकार से काम सुख-दुःखों की ही खान है, अतः उनमें से दुःख ही मिलने वाला है ।

सव्वगहाणं पभवो, महागहो सव्वदोसपायट्टी ।
कामग्गहो दुरप्पा, जेण भिभूअं जगं सव्वं ।।26।।

शब्दार्थ :

सव्व-**सब**	कामग्गहो-**कामग्रह**
गहाणं-**ग्रहों में**	दुरप्पा-**दुष्ट आत्मा**
पभवो-**उत्तम**	जेण-**जिसके द्वार**
महागहो-**महाग्रह**	भिभूअं-**अभिभूत किया गया है ।**
सव्व-**सर्व**	जगं-**जग**
दोस-**दोष**	सव्वं-**सरम**
पायट्टी-**पैदा करनेवाला**	

भावार्थः- काम नाम का विचित्र ग्रह, जिसने संपूर्ण विश्व को वश में किया है, जो सभी उन्मादों का उत्पत्ति स्थान है, महा उन्माद है और सभी दोषों को पैदा करने वाला है ।

विवेचन : शनि-मंगल आदि ग्रह क्रूर कहलाते हैं । वे जहाँ बैठते हैं, उस घर को नुकसान करते हैं । उनकी जहां दृष्टि पड़ती है, उस घर को नुकसान पहुँचाते हैं । राहु-केतु, मंगल-शनि आदि से भी ज्यादा भयंकर हैं कामग्रह !

मंगल-शनि आदि क्रूर ग्रह उत्पात मचाते हैं, परंतु उसकी अपनी एक काल-मर्यादा है, उसके बाद वे शांत हो जाते हैं, परंतु काम एक ऐसा विचित्र ग्रह है जो जिंदगी भर व्यक्ति को परेशान करता है ।

दुनिया में पैदा होनेवाले अधिकांश उत्पातों का मूल यह काम ही है । इसने भाई-भाई के बीच लड़ाई पैदा की है ।

राम-रावण का भयंकर युद्ध कामग्रह की ही उपज है । रावण यदि सीता को पाने के लिए लालायित नहीं होता तो शायद रामायण की रचना कुछ और ही होती ।

इस काम ने सारे जगत् को वश में कर लिया है ।

जह कच्छुल्लो कच्छुं, कंडुअमाणो दुहं मुणइ सुक्खं ।
मोहाउरा मणुस्सा, तह कामदुहं सुहं बिंति ।।27।।

शब्दार्थ :

जह-**जिस प्रकार**	मोहाउरा-**मोहरूपी काम की खुजली से आतुर ।**
कच्छुल्लो-**खुजली का रोगी**	मणुस्सा-**मनुष्य**
कच्छुं-**खुजली को**	तह-**उसी प्रकार**
कंडुअमाणो-**खुजलाते समय**	कामदुहं-**काम रूपी दुःख को**
दुहं-**दुःख को**	सुइं-**सुखरूप**
मुणइ-**मानता है**	बिंति-**मानता है**
सुक्खं-**सुखरूप**	

भावार्थ:- जिस प्रकार खुजली का रोगी खुजलाते समय दुःख को सुख रूप मानता है, उसी प्रकार मोह रूपी काम की खुजली से व्याकुल बना मनुष्य काम रूपी दुःख को भी सुख रूप मानता है ।

विवेचन : खुजली का रोगी जब अपने शरीर को खुजलाता है, तब उसे बहुत ही अच्छा लगता है और वह उस खुजलाने की पीडा को भी सुख रूप मानता है, परंतु कुछ समय के बाद उसकी पीड़ा बढ़ जाती है, वह उसके लिए अत्यंत ही दुःखदायी होती है । खुजलाते समय थोड़े समय के लिए सुख की अनुभूति होती है, परंतु उसके परिणाम स्वरूप तो वेदना ही होती है ।

बस, काम-भोग का सुख भी उस खुजली के रोग की भाँति है । काम-भोग करते समय थोड़ी देर के लिए सुखानुभूति होती है, परंतु उसके परिणाम स्वरूप तो दुःख ही होता है ।

संतान के कर्त्तव्य

अंधी माँ भी अपने पुत्र के आगमन को पहिचान लेती है, जबकि आँखों वाले पुत्र को भी माँ दिखाई नहीं देती ।
मातृभाषा, मातृभूमि व माँ का कोई विकल्प नहीं ।

सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा ।
कामे पत्थेमाणा, अकामा जंति दुग्गइं ।।28।।

शब्दार्थ :

सल्लं-**शल्य समान हैं ।**	कामे-**काम भोग की ।**
कामा-**कामभोग ।**	पत्थेमाणा-**इच्छा करनेवाले जीव ।**
विसं-**विष समान हैं ।**	अकामा-**भोग किये बिना ही ।**
कामा-**कामभोग**	जंति-**चले जाते हैं ।**
आसीविसोवमा-**आशीर्विष सर्प के समान ।**	दुग्गइं-**दुर्गति में ।**

भावार्थ:- कामभोग शल्य समान है ! कामभोग विष समान है । काम भोग की इच्छा करनेवाले जीव, कामभोग का भोग किये बिना ही दुर्गति में चले जाते हैं ।

विवेचन : पाँव में लगा हुआ काँटा पाँव की गति को रोक लेता है । आँख में गिरा हुआ एक छोटासा तिनका भी आँख की देखने की शक्ति को अवरुद्ध कर देता है । बस, इसी प्रकार पाँच इन्द्रियों के कामभोग भी आत्मा के विकास की गति को अवरुद्ध कर देते हैं अर्थात् कामभोग का सेवन करनेवाला अपने आत्मविकास की गति को समाप्त कर देता है ।

पांच इन्द्रियों के विषयभोग जहर के समान हैं । जिस प्रकार जहर खानेवाले को तुरंत खत्म करता है, उसी प्रकार ये कामभोग भी आत्मा के विकास की गति को समाप्त कर देते हैं ।

ये कामभोग तो जहर से भी ज्यादा भयंकर हैं । जहर तो खानेवाले को ही मारता है, जबकि ये विषय तो सिर्फ प्रार्थना करनेवाले को भी समाप्त कर देते हैं ।

ये विषय विष से भी ज्यादा खतरनाक हैं ।

विसए अवइक्खंता, पडंति संसारसायरे घोरे ।
विसएसु निराविक्खा, तरंति संसार कंतारे ।।29।।

शब्दार्थ :

विसए-**विषयों की ।**	विसएसु-**विषयों में**
अवइक्खंता-**अपेक्षा रखनेवाले जीव ।**	निराविक्खा-**निरपेक्ष रहनेवाले जीव ।**
पडंति-**डूब जाते हैं ।**	तरंति-**पार कर जाते हैं ।**
संसारसायरे-**संसार सागर में ।**	संसारकंतारे-**संसार-अटवी को ।**
घोरे-**भयंकर**	

भावार्थ:- विषयों की अपेक्षा रखनेवाले जीव भयंकर संसार सागर में डूब जाते हैं, जबकि विषयों के प्रति निरपेक्ष रहनेवाले जीव संसार-अटवी को पार कर जाते हैं ।

विवेचन : जिसके अन्तर्मन में पांच इन्द्रियों के विषयभोगों को पाने की अपेक्षा रही हुई है, वे जीव संसार-सागर में डूब जाते हैं ।

जिस प्रकार पत्थर की नाव में बैठनेवाला डूबता ही है, उसी प्रकार काम का आश्रय लेनेवाला इस संसार-सागर में डूबता ही है ।

जो काम से निरपेक्ष बने, जो काम के विजेता बने, जो काम को नियंत्रित करनेवाले बने, वे इस संसार सागर से पार उतर गए ।

जो कामविजेता हैं, वे निर्मल ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं ।

पांच-महाव्रतों को धारण करनेवाले साधु-साध्वीजी आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं । वे अब्रह्म के सर्वथा त्यागी होते हैं ।

पांच अणुव्रतों को स्वीकार करनेवाले श्रावक भी स्व-पत्नी में संतोष धारण करते हैं, अर्थात् स्त्री का भी मर्यादित दिनों में ही भोग करते हैं ।

मार्गानुसारी जीव भी परस्त्रीगमन और वेश्यागमन का त्याग कर अब्रह्म पर नियंत्रण लाने की कोशिश करता है ।

छलिआ अवइक्खंता, निरावइक्खा गया अविग्घेणं ।
तम्हा पवयणसारे, निरावइक्खेण होअव्वं ।।30।।

शब्दार्थ :

छलिआ-**ठगे गए हैं ।**	तम्हा-**अतः**
अवइक्खंता-**विषयों की अपेक्षावाले जीव ।**	पवयणसारे-**प्रवचन का सार यही है कि ।**
निरावइक्खा-**विषयों से निरपेक्ष ।**	निरावइक्खेण-**विषयों के प्रति निरपेक्ष ।**
गया-**पार उतर गए हैं ।**	होअव्वं-**बनना चाहिए ।**
अविग्घेणं-**निर्विघ्नतया ।**	

भावार्थः- विषयों की अपेक्षा रखनेवाले जीव ठगे गए हैं, जबकि जो विषयों से निरपेक्ष हैं, वे निर्विघ्नतया पार उतर गए हैं । अतः प्रवचन का सार यही है कि विषयों के प्रति निरपेक्ष बनना चाहिए ।

विवेचन : जो व्यक्ति इस संसार में जीने के लिए अथवा मौज-मजा के लिए पाँच इन्द्रियों के विषयों की अपेक्षा रखता है, वह व्यक्ति इन इन्द्रियों के द्वारा ठगा जाता है अर्थात् ये इन्द्रियाँ उसे संसार के जाल में फंसा देती हैं ।

इन्द्रियों के जाल में फंसी हुई आत्मा उस जाल से सहजता से नहीं छूट पाती है अर्थात् संसार के जाल में फँस जाती है ।

जो व्यक्ति संसार के जाल से मुक्त होना चाहता है, उसे इन इन्द्रियों के सुखों के प्रति निरपेक्ष बनना चाहिए अर्थात् उसे अपने जीवन में इन्द्रियों के सुखों की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए ।

जीवन में इन्द्रियों के सुखों की अपेक्षा ही हमारे दुःख का मूल है ।

संतान के कर्त्तव्य

जब धरती पर तुमने पहला श्वास लिया, तब माता-पिता तेरे पास थे, माता-पिता अंतिम श्वास लें, तब तुम उनके पास अवश्य रहना ।

विसयाविक्खो निवडइ, निरविक्खो तरइ दुत्तर भवोहं ।
देवी दीव समागय-भाउअ जुअलेण दिट्ठंतो ।।31।।

शब्दार्थ :

विसयाविक्खो-**विषय की अपेक्षावाला ।**	भवोहं-**भवसागर को ।**
निवडइ-**गिरता है ।**	देवीदीव-**देवी का द्वीप ।**
निरविक्खो-**निरपेक्ष ।**	समागय-**आए हुए ।**
तरइ-**तैरता है ।**	भाउअजुअलेण-**भाई युगल ।**
दुत्तर-**दुस्तर ।**	दिट्ठंतो-**दृष्टांत ।**

भावार्थः- विषयों की अपेक्षा रखनेवाला संसार में डूबता है और विषयों से निरपेक्ष रहनेवाले संसार-सागर से पार उतर जाते हैं । देवी-द्वीप पर आए भ्रातृयुगल का यहाँ दृष्टांत है ।

विवेचन : विषयों में आसक्त बननेवाले का किस प्रकार पतन होता है और विषयों की ममता तोड़नेवाले किस प्रकार संसार सागर से पार उतर जाते है-इस विषय में **सुधर्मास्वामी,** जंबुस्वामी को जिनपालित और जिनरक्षित का दृष्टांत सुनाते हैं ।

चंपानगरी में माकंदी सार्थवाह रहता था । उसकी पत्नी का नाम भद्रा था । उसके दो पुत्र थे...जिनपालित और जिनरक्षित ।

एक शुभदिन उन दोनों पुत्रों ने समुद्रयात्रा के लिए माता-पिता से अनुज्ञा मांगी !

पिता ने समझाया, ``बेटो ! अपने पास अमाप संपत्ति है । 7 पीढ़ी खाए तो भी खूटनेवाली नहीं है, तथा समुद्र यात्रा जोखिम भरी भी है, अतः मत जाओ !''

पिता की बात नहीं मानते हुए वे दोनों समुद्रयात्रा के लिए अति आग्रह करने लगे । आखिर उनके अति आग्रह को देख माता-पिता ने अपनी सहमति दे दी ।

एक शुभ दिन वे दोनों नाव में आरूढ़ हुए और लवण समुद्र में क्रमशः आगे बढ़ने लगे ।

अचानक ही समुद्र में भयंकर तूफान आया । उस भयंकर तूफान से

उनकी नाव भी टूट गई । अचानक सद्भाग्य से लकड़ी का फलक प्राप्त हो जाने से उसके बल पर वे तैरकर किसी रत्नद्वीप में पहुँच गए ।

उसी समय रत्नद्वीप की अधिष्ठायिका देवी वहाँ आई और बोली, ``यदि तुम मेरे साथ भोग करोगे तो जीवित रह सकोगे अन्यथा तुम दोनों को मौत के घाट उतार दिया जाएगा ।''

मरता क्या नहीं करता ? उन दोनों ने देवी की बात स्वीकार की ।

जिनपालित और जिनरक्षित रत्नद्वीप की अधिष्ठायिका देवी के महल में आए और वहां दिव्य सुखों का अनुभव करने लगे ।

काफी समय बीतने के बाद एक दिन उस देवी ने कहा, ``इन्द्र की आज्ञा से मैं लवण समुद्र की अशुचि को दूर करने जा रही हूँ, मैं वापस नहीं आऊँ तब तक तुम सुखपूर्वक यहीं रहो ।''

``तुम्हें यहाँ महल में रहते हुए कंटाला आ जाय तो तुम पूर्व दिशा के वन खंड में चले जाना, वहां वर्षा ऋतु के अनुकूल वातावरण होगा । वहां भी कंटाला आ जाय तो उत्तर दिशा के वनखंड में जाना, वहां शरद व हेमंत ऋतु के अनुकूल वातावरण मिलेगा । वहाँ भी कंटाला आ जाय तो पश्चिम दिशा के वनखंड में जाना, वहाँ वसंत व ग्रीष्म ऋतु के अनुकूल वातावरण मिलेगा ।

कदाचित् वहां भी कंटाला आ जाय तो वापस इसी महल में आ जाना और मेरे आगमन की इंतजारी करना, परंतु भूल से भी दक्षिण दिशा में मत जाना, क्योंकि वहाँ भयंकर दृष्टिविष सर्प रहता है ।'' इतनी सूचना देकर वह देवी वहाँ से चली गई ।

कुछ समय बाद फिर वे दोनों भाई उस महल से कंटालकर क्रमशः पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा के वनखंड में गए ।

अंत में देवी का निषेध होने पर भी वे दक्षिणदिशा के वनखंड की ओर गए । वहाँ पर उन्हें मृत मनुष्यों की हड्डियों के ढेर दिखाई दिए । आगे बढ़ने पर उन्होंने तीक्ष्ण शूल से भेदे हुए पुरुष को देखा, जो मृत्यु की तैयारी में था !

जिनपालित व जिनरक्षित ने पूछा, ``तुम कौन हो और तुम्हारी यह दुर्दशा कैसे हुई ?''

उसने कहा, ``यह रत्नद्वीप की देवी का वधस्थल है । मैं काकंदी नगरी से व्यापार हेतु लवण समुद्र से जा रहा था, तभी सामुद्रिक तूफान आने

से मेरी नाव टूट गई-अंत में लकड़ी का एक पाटिया मुझे मिल गया, उसके सहारे मैं इस रत्नद्वीप पर आया । यहाँ की देवी के साथ मैं भी भोग-सुखों का अनुभव कर रहा था, अचानक मुझ से कोई अपराध हो गया । बस, उस अपराध की सजा मैं भुगत रहा हूँ । शायद भविष्य में तुम्हारी भी यही हालत हो सकती है ।

दोनों भाइयों ने पूछा, ``इस देवी के जाल में से बचने का कोई उपाय है ?''

उसने कहा, ``हाँ ! एक उपाय है ।''

पूर्व दिशा के वनखंड में अश्व का रूप करनेवाला शैलक नामका यक्ष है । उसकी उपासना करने पर वह तुम्हें अपने स्थान पर सुरक्षित पहुँचा सकता है । अन्य कोई उपाय नहीं है ।''

वे दोनों भाई पूर्व दिशा में शैलक यक्ष के मंदिर में पहुँच गए । वहाँ उन्होंने यक्ष की खूब सेवा-भक्ति पूर्वक उपासना की ।

उसके बाद प्रगट होकर उस यक्ष ने कहा, ``मैं तुम्हें घोड़े पर बिठाकर ले जाऊंगा, परंतु उस समय वह देवी आकर तुम्हारे ऊपर प्रतिकूल-अनुकूल उपसर्ग करेगी, यदि तुम उसके अनुकूल उपसर्ग के वश हो गए तो मैं वहीं पर तुम्हें नीचे गिरा दूंगा और विचलित नहीं हुए तो तुम्हें अपने घर पहुँचा दूंगा ।''

यक्ष की यह बात सुनकर उन दोनों ने कहा, ``आपकी शर्त हमें मंजूर है, हम उस देवी के उपसर्गों से लेश भी विचलित नहीं होंगे ।''

बस, कुछ समय बाद यक्ष ने अश्व का रूप किया और वे दोनों भाई उस पर सवार हो गए । वह अश्व तेजी से लवण समुद्र के ऊपर से दौड़ने लगा ।

इसी बीच रत्नद्वीप की वह देवी वहाँ आ गई । उसने अपने महल में जिनपालित व जिनरक्षित को नहीं देखा । अपने ज्ञान का उपयोग लगाकर तुरंत ही वह देवी लवण समुद्र में आ गई ।

सर्वप्रथम भीषण उपसर्गों के द्वारा उन दोनों भाइयों को डराने लगी, परंतु जब प्रतिकूल उपसर्गों से वे दोनों विचलित नहीं हुए तो उन्हें वश करने के लिए वह अनुकूल उपसर्ग करने लगी ।

अपने हाव-भाव, रूप-कटाक्ष आदि बताकर उन्हें वश में करने के लिए कोमल व मधुर स्वरों से बोलने लगी ।

देवी के रूप सौंदर्य से जिनरक्षित आकर्षित हो गया । बस, उसी समय शैलक यक्ष ने धक्का देकर उसे नीचे गिरा दिया ।

उसी समय उस देवी ने उसे भाले में पिरोकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर चारों ओर बिखेर दिये ।

देवी के अनुकूल-प्रतिकूल उपसर्गों में भी जिनपालित लेश भी विचलित नहीं हुआ तो शैलक यक्ष ने उसे चंपानगरी में पहुँचा दिया ।

एक शुभ दिन संसार के भोग सुखों से विरक्त बने जिनपालित ने दीक्षा अंगीकार कर ली और निर्मल संयम धर्म का पालन कर, समस्त कर्मों का क्षय कर मोक्ष में चला गया ।

इस प्रकार विषयों में आसक्त बने जिनरक्षित की तरह जो आत्माएँ विषयों में आसक्त बनती हैं, वे संसार में भटकती हैं और जो विषयों से विरक्त बनती हैं, वे जिनपालित की तरह मोक्षसुख प्राप्त करती हैं ।

संतान के कर्त्तव्य

बचपन के आठ साल तुझे अँगुली पकड़ कर जो माँ-बाप स्कूल ले जाते थे, उन माँ-बाप को बुढ़ापे के आठ साल सहारा बन कर मन्दिर ले जाना, शायद थोड़ा सा तेरा कर्ज, थोड़ा सा तेरा फर्ज पूरा होगा ।

जब छोटा था तब माँ की शय्या गीली रखता था, अब बड़ा हुआ, तो माँ की आँखे गीली रखता है ।

हे पुत्र ! तुझे शर्म आनी चाहिये ।

इंदिय विसयपत्ता, पडंति संसारसायरे जीवा ।
पक्खि व्व छिन्नपंखा, सुसीलगुण पेहुणविहूणा ।।32।।

शब्दार्थ :

इंदियविसय-**इंद्रियों के विषयों में ।**	पक्खिव्व-**पंख से रहित जीव ।**
पत्ता-**आसक्त जीव ।**	छिन्नपंखा-**कटे हुए पंखवाले ।**
पडंति-**गिर जाते हैं ।**	सुसीलगुण-**अच्छे आचार को ।**
संसारसायरे-**संसार सागर में ।**	पेहुणबिहुणा-**देखने से रहित जीव**
जीवा-**जीव ।**	

भावार्थः- कटे हुए पंखवाले पक्षी की तरह इन्द्रियों के विषयों में आसक्त जीव संसार सागर में गिर जाते हैं ।

विवेचन : पक्षी आकाश में तभी तक उड़ सकता है, जब तक उसके पंख सुरक्षित होते हैं । पंख कट गए तो उसका उड़ना मुश्किल हो जाता है । बिना पंख के वह उड़ नहीं सकता है । वह उड़ने की कोशिश करेगा तो तुरंत ही नीचे गिर जाएगा ।

बस, पाँच इन्द्रियों के विषयों में आसक्त जीव की भी हालत उसी पंखी की भाँति होती है । वह इस संसार सागर में डूब जाता है ।

संसार-सागर से पार उतरना हो तो जीवात्मा को शील रूपी पांख की आवश्यकता रहती है ।

संतान के कर्त्तव्य

माता–पिता को अरुचि हो, वैसी कोई भी प्रवृत्ति न करे और माता–पिता की प्रसन्नता बढ़े, वैसी प्रवृत्ति करें ।

ऊपर जिसका अंत नहीं उसे आसमाँ कहते हैं,
जहाँ में जिसका अंत नहीं, उसे माँ कहते हैं ।

जं अइतिक्खं दुक्खं, जं च सुहं उत्तमं तिलोयंमि ।
तं जाणसु विसयाणं, वुडिढक्खय हेउअं सव्वं ।।33।।

शब्दार्थ :

जं-**जो**	तं-**वह**
अइदुक्खं-**अतिदुःख**	जाणसु-**जानो**
जं-**जो**	विसयाणं-**विषयों की**
च-**और**	वुड्ढि-**वृद्धि**
सुहं-**सुख**	क्खय-**क्षय**
उत्तमं-**उत्तम**	हेउअं-**हेतु**
तिलोयंमि-**त्रिलोक में**	सव्वं-**सभी**

भावार्थ:- तीन लोक में जो अति दुःख है और जो उत्तम सुख है, वह विषयों की वृद्धि और क्षय के कारण है, ऐसा तुम जानो ।

विवेचन : यद्यपि यह सारा संसार ही दुःखों से भरा हुआ है, इसीलिए पू. हरिभद्रसूरिजी म. ने इस संसार को दावानल की उपमा दी है । फिर भी चार गतियों में दुःख का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो तिर्यंच गति और नरकगति में सबसे अधिक दुःख है ।

नरकों में 7वीं नरक में सबसे अधिक दुःख है तो तिर्यंचों में सब से अधिक दुःख निगोद में है ।

7वीं नरक में सबसे अधिक व्यक्त पीड़ा है और निगोद में सबसे अधिक अव्यक्त पीड़ा है । एक बार आत्मा निगोद में चली गई तो उससे वापस ऊपर उठना ही मुश्किल है ।

कई चौदह पूर्वधर महर्षि भी विषयसुखों में आसक्त बने तो नरक और निगोद में चले गए अर्थात् भयंकर दुःखों का मूल भी पाँच इन्द्रियों का विषय भोग ही है ।

इसी प्रकार संसार में जो सर्वाधिक सुख है वह पाँच अनुत्तरवासी देवों के पास है । ऐसा उत्कृष्ट सुख विषयसुखों के त्याग बिना प्राप्त नहीं होता है । अर्थात् सर्वोच्च सुखों की प्राप्ति इन्द्रियजय से ही है ।

मोक्ष में जो अनंत, अव्याबाध और अक्षय सुख है, उस सुख की भी प्राप्ति इन्द्रियजय के बिना नहीं होती है ।

न लहइ जिहा लिहंतो, मुहल्लिअं अट्ठिअं जहा सुणओ ।
सोसइ तालुय रसियं, विलिहंतो मन्नए सुक्खं ।।34।।
महिलाण कायसेवी न लहइ किं चि वि सुहं तहा पुरिसो ।
सो मन्नए वराओ, सय काय परिस्समं सुक्खं ।।35।।

शब्दार्थ :

न लहइ-**प्राप्त नहीं करता है**
जिहा-**जीभ से**
लिहंतो-**चाटते समय**
मुइल्लिअं-**मुँह में रहे**
अट्ठिअं-**हड्डी को**
जहा-**जिस प्रकार**
सुणओ-**कुत्ता**
सोसइ-**गले को सुखाता है ।**
तालुयरसियं-**मसूड़ो में से खून निकलता है**
विलिहंतो-**स्वाद लेते हुए**
मन्नए-**मानता है**
सुक्खं-**सुख**

महिलाण-**स्त्रियों के**
कायसेवी-**देह का भोग करने से**
न लहइ-**नहीं मिलता है**
किं चि वि-**कुछ भी**
सुहं-**सुख**
तहा-**उसी प्रकार**
पुरिसो-**पुरुष को**
सो-**वह**
मन्नए-**मानता है**
वराओ-**बिचारा**
सयकाय-**खुद की काया के**
परिस्समं-**परिश्रम को ही**
सुक्खं-**सुख**

भावार्थ:- जिस प्रकार कुत्ता मुँह में रही हड्डी को जीभ से चाटते समय कुछ भी प्राप्त नहीं करता है, परंतु अपने गले को सुखाता है और हड्डी के चबाने से उसके मसूड़ों में से खून निकलता है, उसी खून का स्वाद लेते हुए उसे सुख मानता है ।

उसी प्रकार स्त्रियों के देह का भोग करने से पुरुष को कुछ भी सुख नहीं मिलता है, परंतु वह बिचारा काया के परिश्रम को ही सुख मानता है ।

विवेचन : मार्ग में कहीं हड्डी के टुकड़े को देखकर कुत्ता उसे मांस का टुकड़ा मानकर अपने मुँह में ले लेता है, फिर उसमें से कुछ स्वाद पाने के लिए उस हड्डी के टुकडे को जोरजोर से चबाता है । जोर से चबाने के कारण उसके तालु में से खून बहने लगता है । उसी खून का स्वाद लेते समय कुत्ता यह समझता है कि मुझे इस हड्डी में से खून पीने को मिल रहा है । परंतु यह उसका एक मात्र भ्रम ही होता है ।

बस, मोह में मदमस्त बना पुरुष भी स्त्री के साथ शारीरिक संबंध करते समय स्त्री में से सुख-प्राप्ति की कल्पना करता है, परंतु वास्तव में देखा जाय तो स्त्री से उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता है, परंतु वह स्वयं ही श्रमित बनता है । अज्ञानता और मिथ्या भ्रम के कारण वह कल्पना कर लेता है कि उसे स्त्री देह में से सुख की प्राप्ति हो रही है ।

संतान के कर्त्तव्य

प्रातःकाल में उठने के बाद पंच परमेष्ठी के स्मरण के बाद अपने उपकारी माता-पिता का स्मरण करना चाहिए और उनके चरणों में नमस्कार करना चाहिए ।

माता-पिता के प्रति औचित्य का पालन करना, उसे लौकिक सौंदर्य कहते हैं और सद्गुरु के प्रति औचित्य का पालन करना, उसे **लोकोत्तर सौंदर्य** कहते हैं ।

घर में सब कुछ सुविधाएँ होने पर भी अपने वृद्ध माता-पिता को घर में रखने की तैयारी नहीं है । सचमुच, उसका भाग्य समाप्त हो चुका है ।

सट्ठु वि मग्गिज्जंतो कत्थ वि कमलीइ नत्थि जह सारो ।
इंदियविसएसु तहा, नत्थि सुहं सुट्ठु वि गविट्ठं ।।36।।

शब्दार्थ :

सुट्ठु वि-**अच्छी तरह से**	इंदिय विसएसु-**इन्द्रियों के विषय में**
मग्गिज्जंतो-**शोध करने पर भी**	तहा-**उसी प्रकार**
कत्थवि-**कहीं भी**	नत्थि-**दिखाई नहीं देता है**
केलीइ-**केले के स्कंध में**	सुहं-**सुख**
नत्थि-**दिखाई नहीं देता है**	सुट्ठुवि-**अच्छी तरह से भी**
जह सारो-**जिस प्रकार सार**	गविट्ठं-**विचार करने पर**

भावार्थ:- जिस प्रकार अच्छी तरह से शोध करने पर भी केले के स्कंध में कहीं सार दिखाई नहीं देता है उसी प्रकार इन्द्रियों के विषय में भी विचार करने पर लेश भी सुख दिखाई नहीं देता है ।

विवेचन : केले के वृक्ष की छाल को ज्यों-ज्यों उतारते जाते हैं, त्यों-त्यों वह छाल उतरती जाती है, परंतु उसमें भीतर से कुछ भी प्राप्त नहीं होता है अर्थात् वह अंदर से खाली ही है ।

बस, इसी प्रकार पाँच इन्द्रियों के विषय भोगों द्वारा जीवात्मा सुख पाना चाहता है, परंतु ज्यों-ज्यों उन विषयों का भोग करता है, त्यों-त्यों वह श्रम बेकार ही जाता है । अंत में हाथ में कुछ भी नहीं रहता है ।

खाने का आनंद कब तक ? जब तक वह मधुर-पदार्थ जीभ पर है, तब तक ! जीभ से नीचे उतरने के साथ ही उस स्वाद का आनंद समाप्त हो जाता है । अरे ! कदाचित् खाया हुआ बाहर निकल जाए तो वो ही पदार्थ सुख के बदले दु:ख का कारण बन जाता है ।

बस, यही स्थिति पाँचों इन्द्रियों के अन्य विषयभोगों के संदर्भ में भी है ।

विषय सुख का आनंद क्षणिक है, अतः उसमें लीन बनने जैसा नहीं है ।

इन्द्रियों के विषयों में सुख नहीं है, बल्कि सुख का आभास है । आभास और वास्तविकता में बहुत बडा अंतर है । जो आभास है, वह तो सिर्फ भ्रम ही है-अपने हाथ में कुछ भी नहीं आता है ।

सिंगार तरंगाए विलासवेलाइ जुव्वणजलाए ।
के के जयंमि पुरिसा, नारी नईए न बुड्डंति ।।37।।

शब्दार्थ :

सिंगार-**शृंगार रूपी**	के के-**कौन सा**
तरंगाए-**तरंगोंवाली**	जयंमि-**जगत् में**
विलास-**विलास रूपी**	पुरिसा-**पुरुष**
वेलाइ-**ज्वारवाली**	नारी-**नारी रूपी**
जुव्वण-**यौवनरूपी**	नईए-**नदी में**
जलाए-**जलवाली**	न बुड्डंति-**डूबता नहीं है**

भावार्थः- शृंगार रूपी तरंगोंवाली, विलासरूपी ज्वार वाली, यौवनरूपी जलवाली, नारी रूपी नदी में कौनसा पुरुष डूबता नहीं है ।

विवेचन : समुद्र की भाँति कई बड़ी-बड़ी नदियों में भी अमाप जल-राशि होती है । नदी में जब बाढ आती है तब उसका जल-प्रवाह अत्यंत तेजी से बहता है, जिसे पार करना अच्छे-अच्छे तैराक के लिए भी मुश्किल हो जाता है । उस नदी में अच्छे अच्छे तैराक भी डूब जाते हैं ।

ग्रंथकार महर्षि नारी को वेगवती नदी की उपमा दे रहे हैं । नदी की तरह नारी भी भयंकर है, जिसके रूप सौंदर्य में फंसकर अच्छे अच्छे नवयुवक भी मोहजाल में फँस जाते हैं ।

नारी का देह-श्रृंगार, यह नदी में जोर से उठनेवाली तरंगों की भाँति है । स्त्री के गमनागमन या खड़े रहने की क्रिया आदि को विलास कहते हैं ।

समुद्र में जैसे ज्वार आता है, तब पानी जोरों से उछलने लगता है और जल नदी का प्रवाह समुद्र तट पर भी आ जाता है । बस, नवयौवना स्त्री के हाव भाव आदि की चेष्टाएँ नदी के वेगतुल्य हैं, जिसमें युवावर्ग जल्दी फँस जाता है ।

भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है–

हे संसार ! यदि तेरे पास में स्त्रियाँ नहीं होतीं तो किसी भी पुरुष के लिए तेरा पार पाना मुश्किल नहीं होता अर्थात् स्त्री के रूप-सौंदर्य के जाल में पुरुष फँस जाता है ।

स्त्री के मन की गहराई को जानना पहिचानना पुरुष के लिए बहुत ही कठिन है । आदमी जिसके रूप में पागल होता है, वह स्त्री अन्य किसी और

में आसक्त होती है और वह जिसको दिल से चाहती है, वह और किसी में आसक्त होता है ।

स्त्री के मायाजाल को नहीं समझनेवाला पुरुष स्त्री के जाल में फँस जाता है ।

अनेक वेश्याओं ने अपने रूप-सौंदर्य से आकर्षित कर अनेक पुरुषों का चारित्रिक पतन कराया है ।

संतान के कर्त्तव्य

सुख-सुविधाओं की सभी वस्तुएँ पैसे से खरीदी जा सकती हैं परंतु संस्कारित माता-पिता तो पुण्य से ही मिलते हैं ।

सरसो के दाने जितनी पथरी भी तुझे परेशान कर देती है, जरा विचार कर, माँ ने तुझे नौ माह तक पेट में कैसे उठाया होगा ?

बचपन में माँ बाप ने तुमको बोलना सिखाया । तुम बड़े होकर माँ-बाप को मौन रहने की सीख देते हो ? शर्म आनी चाहिए ।

सोयसरी दुरिअदरी कवडकुडी महिलिया किलेसकरी ।
वयर विरोअण-अरणी, दुःखखणी सुक्ख पडिवक्खा ।।38।।

शब्दार्थ :

सोयसरी-**शोक की नदी**	विरोअण-**अग्नि के लिए**
दुरिअदरी-**पाप की गुफा**	अरणी-**अरणी के काष्ट समान**
कवडकुडी-**कपट का मंदिर**	दुःखखणी-**दुःख की खान**
महिलिया-**नारी**	सुक्ख-**सुख की**
किलेसकरी-**क्लेश उत्पन्न करनेवाली**	पडिवक्खा-**वैरिणी है**
वयर-**वैर रूपी**	

भावार्थः- नारी शोक की नदी, पाप की गुफा, कपट का मंदिर, क्लेश उत्पन्न करनेवाली, वैर रूपी अग्नि के लिए अरणि काष्ट समान, दुःख की खान और सुख की वैरिणी है ।

विवेचन : इष्ट वस्तु के वियोग से जो मानसिक पीड़ा होती है, उसे शोक कहते हैं । स्त्रियाँ शोक को पैदा करानेवाली हैं ।

उसकी इच्छानुसार प्रवृत्ति नहीं होने पर अथवा उसकी मांगें पूरी नहीं होने पर वह पीहर चले जाने की धमकी देती है, कोई तलाक Divore की धमकी देती है और इन बातों को सुनकर कई पुरुषों का मन हताश निराश या शोकग्रस्त हो जाता है ।

शादी पुरुष-स्त्री की साथ में होती है, परंतु उन दोनों की मृत्यु भी साथ में होगी, ऐसी कोई गारंटी नहीं है । पहले पुरुष की भी मृत्यु हो सकती है अथवा स्त्री की भी ! पहले पुरुष मर गया तो स्त्री **विधवा बन** जाएगी और पहले स्त्री मर गई तो पुरुष **विधुर बन** जाएगा ।

पति के वियोग में स्त्री शोकग्रस्त बनती है और पत्नी के वियोग में पति शोकग्रस्त बनता है ।

स्त्री तो पाप की गुफा है । स्त्री के निमित्त पुरुष को कितने-कितने पाप करने पड़ते हैं ।

किसी को फैशनग्रस्त स्त्री मिली है तो पुरुष की हालत खस्ता हो जाती है ।

स्त्री को कपट व माया का मंदिर कहा गया है । वह बोलती कुछ और है और उसके मन में कुछ और ही होता है । वह कहती कुछ है और करती कुछ है ।

कहा भी है-पुरुष के भाग्य को और स्त्री के चरित्र को ब्रह्मा भी नहीं समझ सकते हैं ।

स्त्री क्लेश करनेवाली है अर्थात् झगड़ा करने में स्त्री खूब होशियार होती है । छोटी-छोटी बात को लेकर वह बड़ा महाभारत खडा कर देती है ।

वैर रूपी आग को पैदा करने में अरणि काष्ट समान है । अरणिकाष्ट में आग जल्दी पैदा होती है । स्त्री भी वैर पैदा करने में प्रबल निमित्त बनती है ।

कहा भी है-**'जर जमीन ने जोरू, त्रणेय कजिया ना छोरू ।'**

दुनिया में जितने भी झगड़े खड़े होते हैं, उन सबका मूल धन, जमीन और स्त्री ही होते हैं ।

जमीन के लिए महाभारत का युद्ध हुआ तो स्त्री के लिए रामायण का युद्ध खेला गया ।

स्त्री स्वयं झगड़ा करने में होशियार होती है तो इसके साथ ही अनेक झगड़ों में स्त्री ही प्रबल निमित्त बनती है ।

जैसे लोहे की खान में लोहा ही मिलता है और कोयले की खान में से कोयला ही मिलेगा, उसी प्रकार स्त्रियों को दुःख की खान कहा गया है, इसका अर्थ है, उसके संपर्क व संबंध से तुम्हें दुःख की ही भेंट मिलनेवाली है ।

संतान के कर्त्तव्य

बँटवारे के समय घर की हर चीज पाने के लिए झगड़ने वाले बेटे दो चीजों के लिए उदार बनते हैं जिनका नाम है माँ-बाप ।

माँ तुम कैसी हो ? इतना ही पूछ । मानों, उसे मिल गया सब कुछ ।

अमुणिअ मणपरिकम्मो, सम्मं को नाम नासिउं तरइ ।
वम्मह सर पसरोहे, दिट्ठिच्छोहे मयच्छीणं ।।39।।

शब्दार्थ :

अमुणिअ-**अज्ञात**	वम्मह-**काम**
मणपरिकम्मो-**मन के विचार**	सर-**बाण**
सम्मं-**अच्छी तरह**	पसरोहे-**फैलाव**
को नाम-**कौन व्यक्ति**	दिट्ठिछोहे-**दृष्टि का क्षोभ**
नासिउं-**भागने के लिए**	मयच्छीणं-**स्त्री का**
तरइ-**समर्थ है**	

भावार्थः- कामदेव के बाणों के समान स्त्रियों की दृष्टि से क्षोभ पाकर, स्त्री के मनोव्यापार को नहीं जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष भाग जाने में समर्थ है ?

विवेचन : शिकारी अथवा अन्य किसी के बाण के प्रहार से बचना तो फिर भी आसान है परंतु स्त्री के कटाक्ष-बाणों से बचना बहुत ही मुश्किल है । स्त्री के कटाक्ष बाणों का जो शिकार हो गया, उसका चारित्रिक पतन हुए बिना नहीं रहता है ।

कामदेव के पाँच बाण कहे गए हैं-उन्मादन, मोहन, तापन, शोषण और मारण ।

स्त्री के दृष्टि कटाक्ष से पहले पुरुष में उन्माद पैदा होता है, फिर वह उस स्त्री के प्रति मोहित होता है । उसके बाद जब तक उसे स्त्री की प्राप्ति न हो तब तक मन में ताप-संताप रहता है । स्त्री के भोग में पुरुष की शक्ति का ही ह्रास होता है अतः पुरुष का शोषण होता है और अति कामासक्ति पुरुष के लिए मौत का भी कारण बनती है ।

इस संदर्भ में शास्त्र में सुनंदा व रूपसेन का दृष्टांत प्रसिद्ध है ।

पुरुष के द्वारा स्त्री पर हो रहे अत्याचारों को देखकर एक बार तो सुनंदा ने मनोमन निश्चय कर लिया था कि मुझे इस जीवन में शादी नहीं करनी है ।

परंतु यौवन के प्रांगण में प्रवेश करने के साथ ही उसके मन के भीतर काम की आग पैदा हो जाती है, जिसके फलस्वरूप वह किसी भी प्रकार से पुरुष को अपने जाल में फँसाना चाहती है ।

अपने महल के गवाक्ष में से वह अत्यंत ही रूपवान रूपसेन को देखती है । रूपसेन सुनंदा को देखता है । बस, रूपसेन सुनंदा के नेत्रबाणों से घायल हो जाता है । वह उसे पाने के लिए लालायित हो जाता है ।

रूपसेन के साथ अपना संबंध जोड़ने के लिए सुनंदा अनेक माया-कपट का आश्रय लेती है ।

सुनंदा के रूप में पागल बना रूपसेन भी झूठ का आश्रय लेता है । सुनंदा को पाने के लिए रूपसेन के 7-7 भव हो जाते हैं । अनेक भवों में उसे बेमौत मरना पड़ता है ।

ऐसे अनेक दृष्टांत इतिहास के पन्नों पर आलेखित हुए हैं ।

संतान के कर्त्तव्य

जीवित माँ-बाप को अंतर से जलानेवाला उनके मरने के बाद उनकी तस्वीर को सोने से मढ़े तो भी उसकी कीमत धुल बराबर है ।

जन्म के समय जब कमजोर था, माँ-बाप ने तुझे सँभाला अब माँ-बाप कमजोर हो जाय तो तू उन्हें सँभाल लेना ।

माँ की एक झोपड़ी में सात संतानें रह सकती हैं, जबकि 1000 फुट के बंगले में माँ-बाप के लिए स्थान नहीं है । कलियुग की बलिहारी है ।

परिहरसु तओ तासिं, दिट्ठिं दिट्ठीविसस्स व अहिस्स ।
जं रमणि नयणबाणा, चरित्तपाणा विणासंति ।।40।।

शब्दार्थ :

परिहरसु-**तुम दूर करो**	जं-**इस कारण**
तओ-**अतः**	रमणि-**स्त्री के**
तासिं-**स्त्रियों को**	नयणबाणा-**नयनबाण**
दिट्ठिं-**दृष्टि से**	चरित्तपाणा-**चारित्र रूपी प्राणों का**
दिट्ठीविसस्स-**दृष्टिविष**	विणासंति-**नाश करते हैं**
व अहिस्स-**सर्प जैसी**	

भावार्थः- इस कारण स्त्री के नयन-बाण चारित्र रूपी प्राणों का नाश करते हैं, अतः दृष्टिविष सर्प जैसी स्त्रियों को तुम दृष्टि से ही दूर करो ।

विवेचन : सभी प्रकार के साँपों की दाढ़ाओं में लगभग जहर होता है । साँप जब काटता है तो आदमी को जहर चढ़ता है और उस जहर को तत्काल नहीं उतारा जाय तो आदमी मर भी सकता है ।

कुछ साँप ऐसे होते हैं, जिनकी दृष्टि में ही जहर होता है, ऐसे साँप की नजर किसी पर गिरती है और व्यक्ति उस जहर के प्रभाव से मर जाता है ।

शास्त्र में भगवान महावीर के चरित्र के साथ चंडकोशिक साँप की बात आती है, जो दृष्टिविष सर्प था, अर्थात् उसकी दृष्टि में ही जहर था, वह जिसकी ओर नजर करता, वह वहीं पर ढेर हो जाता । चंडकोशिक के परिभ्रमण का पूरा क्षेत्र पशु-पक्षी से विहीन हो गया था ।

आखिर, प्रभु महावीर ने उसे प्रतिबोध दिया था ।

ग्रंथकार महर्षि ने प्रस्तुत गाथा में स्त्रियों को ही दृष्टिविष साँप की उपमा दी है । स्त्रियों की नजर में ही काम का विष होता है ।

जिस पुरुष के ऊपर स्त्री अपने कटाक्ष-बाण फेंकती है, अथवा जो पुरुष स्त्री को कामराग की नजर से देखता है, वह स्त्री की नजर पड़ते ही काम रूपी विष से घायल हुए बिना नहीं रहता है ।

स्त्रियों के कटाक्ष से पुरुष का चारित्र नष्ट हुए बिना नहीं रहता है ।

सिद्धंतजलहि पारंगओ वि, विजिइंदिओ वि सूरो वि ।
दढचित्तो वि छलिज्जइ, जुवइ पिसाईहिं खुड्डाहिं ।।41।।

शब्दार्थ :

सिद्धंतजलहि-**सिद्धांत रूपी सागर को**	छलिज्जइ-**ठगा जाता है**
पारंगओ वि-**पार किया हुआ**	जुवइपि-**स्त्री रूपी**
विजिइंदिओ वि-**जितेन्द्रिय**	साईहि-**क्षुद्र ऐसी**
सूरो वि-**शूरवीर और**	खुड्डाहिं-**पिशाचिनियों के द्वारा**
दढचित्तो वि-**दृढ़चित्तवाला भी**	

भावार्थ:- सिद्धांत रूपी सागर को पार किया हुआ जितेन्द्रिय, शूरवीर और दृढ़चित्तवाला भी क्षुद्र ऐसी स्त्री रूपी पिशाचिनियों के द्वारा ठगा जाता है ।

विवेचन : स्त्री को अबला अर्थात् कमजोर कहा गया है, परंतु वह बलवान पुरुष को भी हरा देती है ।

पुरुष बलवान है, यदि वह कामविजेता है । जो पुरुष कामवासना का गुलाम है, कामांध बना है, ऐसा पुरुष स्त्री के आगे हार खा जाता है-चाहे वह पुरुष शास्त्रों के संपूर्ण रहस्य का ज्ञाता ही क्यों न हो ! भले ही उसने सभी इन्द्रियाँ अपने वश में कर ली हों, वह पराक्रम और दृढ़ मनोबलवाला भी क्यों न हो, परंतु स्त्रियाँ अपने रूप-सौंदर्य और हाव-भाव द्वारा पुरुष का अधःपतन करा देती हैं ।

सिंहगुफावासी मुनि शास्त्रों के ज्ञाता थे । एकाकी प्रतिमा धारण करने में समर्थ थे । चातुर्मास में चार मास के उपवास कर सकते थे । अपनी संयम-साधना द्वारा उन्होंने सिंह जैसे सिंह को भी उपशांत कर दिया था ।

ऐसे ज्ञानी, तपस्वी, संयमी आत्मा का भी मानसिक अधःपतन हो गया !

संतान के कर्त्तव्य

घर में माँ को रुलाए और मन्दिर में माँ को चुनरी ओढ़ाए, याद रख, मन्दिर की माँ तुम पर खुश नहीं, शायद खफा जरूर होगी ।

मयण नवणीय विलओ, जह जायइ जलण संनिहाणंमि ।
तह रमणि-संनिहाणे, विद्दवइ मणो मुणीणं पि ।।42।।

शब्दार्थ :

मयण-**मोम**	तह-**उसी प्रकार**
नवणीय-**नवनीत (मक्खन)**	रमणि-**स्त्री के**
विलओ-**पिघल**	संनिहाणे-**संपर्क से**
जइ-**जिस प्रकार**	विद्दवइ-**पिघल जाता है**
जायइ-**जाता है**	मणो-**मन**
जलण-**अग्नि**	मुणीणं-**मुनियों का**
संनिहाणंमि-**के संपर्क से**	पि-**भी**

भावार्थ:- जिस प्रकार अग्नि के संपर्क से मोम और नवनीत (मक्खन) पिघल जाता है, उसी प्रकार स्त्री के संपर्क से मुनियों का मन भी पिघल जाता है ।

विवेचन : आग के संपर्क में आने पर मोम और मक्खन पिघलते ही हैं । अग्नि के संपर्क में आने के बाद मोम या मक्खन ठोस नहीं रह सकते हैं । मोम या मक्खन को मजबूत रखना हो तो उसे आग के संपर्क से दूर रखना ही होगा । आग के संपर्क के साथ ही मोम का पिघलना प्रारंभ हो जाता है ।

बस, यही स्थिति स्त्री के संपर्क में पुरुष की है । पुरुष मोम है और स्त्री आग है । स्त्री का संपर्क होने पर पुरुष का पत्थर हृदय भी पिघले बिना रहता नहीं है ।

स्त्री के रूपदर्शन से, उसके हाथ आदि अंगोपांगों का स्पर्श करने से पुरुष का मन ढीला हो जाता है, वह उसके साथ शारीरिक संबंध बनाने के लिए इच्छुक हो जाता है ।

संभूति मुनि महातपस्वी थे । उनके वंदन के लिए सनत्कुमार चक्रवर्ती का अंत:पुर परिवार आया । वंदन करते समय स्त्रीरत्न की केशलता का स्पर्श संभूति मुनि को हो गया और उस स्पर्श के साथ ही संभूति मुनि की सारी विचारधारा बदल गई ।

आत्मकल्याण के लिए अब तक जो कष्ट सहन किया था, वह अब उन्हें निरर्थक लगने लगा । स्त्रीरत्न की प्राप्ति में, उसके भोग में वे अपूर्व सुख की कल्पना करने लगे ।

परिणाम यह आया कि उसी समय उनका मानसिक पतन चालू हो गया । वे ऐरावण हाथी को बेचकर एक गधा खरीदने के लिए तैयार हो गए । मोक्षसुख को भूल कर वे इन्द्रियजन्य कामसुखों में आसक्त बन गए ।

बस, स्त्री के स्पर्श में वे स्वर्गीय सुखों की कल्पना कर बैठे । स्त्रीरत्न को पाने के लिए वे दीर्घ संयम धर्म की साधना को भी बेचने के लिए तैयार हो गए । उसी समय उन्होंने स्त्रीरत्न को प्राप्त करने का निदान भी कर लिया ।

आखिर संभूति मुनि ब्रह्मदत्त नाम के चक्रवर्ती बने । कुछ वर्षों तक सांसारिक सुखों का भोगकर वे मरकर 7वीं नरक में चले गए ।

क्षणिक भोगसुखों का कितना भयंकर व कटु परिणाम !

संतान के कर्त्तव्य

टी.वी. वीडियो से प्रेम करनेवाला जब अपने माँ-बाप से ही प्रेम नहीं रखता है तो इसे कलियुग की बलिहारी ही कहा जाएगा ।

मौत के बिछौने पर रही माँ भी पुत्र के हित की चिंता करती है, जब कि गाड़ियों में घूमनेवाला बेटा माँ को भी भूल जाता है, कैसा आश्चर्य !

नीयंगमाहिं सुपयोहराहिं उप्पेच्छ-मंथरागईहिं ।
महिलाहि निमग्गाहिव गिरिवर गुरुआ वि भिज्जंति ।।43।।

शब्दार्थ :

नीयंगमाहिं-**नीचे जानेवाली**	महिलाहि-**स्त्रियों**
सुपयोहराहिं-**अच्छे पानी को धारण करनेवाली**	निमग्गाहिव-**नदी द्वारा**
उप्पेच्छ-**ऊँचे होकर देखने योग्य**	गिरिवर-**पर्वत**
मंथरागईहिं-**मंथर गतिवाली**	गुरुआ वि-**बडे भी**
	भिज्जन्ति-**भेदा जाता है**

भावार्थः- नीचे जानेवाली, अच्छे पानी को धारण करनेवाली और मंथर गतिवाली नदी द्वारा बड़े पर्वत भी भेदे जाते हैं, उसी प्रकार नीच लोगों का संपर्क करनेवाली, सुंदर स्तनवाली और ऊपर देख-मंथरगति से चलने-वाली स्त्रियाँ महापुरुषों के मन को भी भेद देती हैं ।

विवेचन : पर्वत पर से नदी तीव्र गति से बहती है तो वह पर्वत के कुछ भाग को भी तोड देती है । तीव्र गति से बहनेवाली नदी में पानी भी अत्यधिक प्रमाण में होता है । अपनी गति से वह पर्वत को भी भेद डालती है ।

पानी कोमल होता है, पानी कमजोर होता है, परंतु अपने तीव्र वेग से पर्वत को भी भेद डालता है, उसी प्रकार स्त्री भले ही कोमल देहवाली है, परंतु वह जब चरित्रहीन बनती है, तब नीच पुरुषों का भी संग करने के लिए तैयार हो जाती है । अपने पुष्ट स्तनों द्वारा अच्छे-अच्छे पुरुषों के मन को भी भेद डालती है ।

युद्ध में सैकड़ों शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनेवाले शूरवीर पुरुष भी स्त्री के रूप-सौंदर्य व पुष्ट पयोधर आदि के आगे हार खा जाते हैं ।

रावण तीन खंड का अधिपति था । उसके अंत:पुर में स्त्रियों की कोई कमी नहीं थी, परंतु सीता के रूप में पागल बनने के कारण वह सीता के चरणों में आलोटता था ।

विसयजलं मोहकलं, विलासविव्वो अ जलयराइन्नं ।
मयमयरं उत्तिन्ना, तारुण्ण महन्नवं धीरा ।।44।।

शब्दार्थ :

विसयजलं-**विषय रूपी जल**	मयमयरं-**मद रूपी मगरों से**
मोहकलं-**मोह रूपी मधुर आवाज**	उत्तिन्ना-**पार कर देते हैं**
विलास-**विलास और**	तारुण्ण-**तारुण्य रूप**
विव्वोअ-**विव्वोअ रूपी**	महन्नवं-**महासमुद्र को**
जलयराइन्नं-**जलचर प्राणियों से व्याप्त**	धीरा-**धीरपुरुष**

भावार्थः- विषय रूपी जल, मोह रूपी मधुर आवाज, विलास और विव्वोअ रूपी जलचर प्राणियों से व्याप्त तथा मद रूपी मगरों से युक्त तारुण्य रूप महासमुद्र को धीरपुरुष पार कर देते हैं ।

विवेचन : जीवन की तीन अवस्थाएँ हैं-बाल, यौवन और वृद्धावस्था, परंतु इन तीन अवस्थाओं में यौवन वय को निष्कलंक पार करना बहुत ही कठिन है ।

बाल्यवय में शारीरिक इन्द्रियों का और बुद्धि का विकास नहीं होने से कामवासना विकार को कोई स्थान नहीं होता है । इसलिए तो कहा गया है- कि बालक का हृदय साफ होता है, बच्चे मन के सच्चे होते हैं ।

वृद्धावस्था में इन्द्रियाँ कमजोर हो जाती हैं । स्मरण शक्ति आदि भी घट जाती है, इस कारण उस अवस्था में भी काम का जोर घट जाता है ।

कामवासना का प्रबल उपद्रव होता है युवावस्था में !

एक संत के ये वचन उचित ही हैं —

'अगली भी अच्छी
पिछली भी अच्छी
बिचली को मारो जूतों की मार ।'

अगली अर्थात् बाल्यावस्था भी अच्छी है । पिछली अर्थात् वृद्धावस्था भी अच्छी है, परंतु बिचली अर्थात् यौवन वय सबसे अधिक भयंकर है इसलिए उस पर जूतों की मार अर्थात् उस पर प्रबलतम अंकुश जरूरी है ।

जइ वि परिचत्तसंगो, तवतणुअंगो तहा वि परिवडइ ।
महिलासंसग्गीए कोसाभवणोसिय मुणिव्व ।।45।।

शब्दार्थ :

जइवि-**यद्यपि**	परिवडइ-**पतन हो जाता है**
परिचत्त-**त्याग किया हो**	महिला-**स्त्री के**
संगो-**संग का**	संसग्गीए-**संग से**
तप-**तपसे**	कोसा-**कोशा**
तणुअंगो-**कृश शरीरवाले हो**	भवणोसिय-**भवन में रहे**
तहा वि-**फिर भी**	मुणिव्व-**मुनि की तरह**

भावार्थः- संग का त्याग किया हो और तप से कृश शरीरवाले हो, फिर भी स्त्री के संग से कोशा भवन में रहे मुनि की तरह पतन हो जाता है ।

विवेचन : इस गाथा में ग्रंथकार महर्षि ने स्त्री-संसर्ग की भयंकरता बतलाई है । त्यागी और तपस्वी मुनियों का भी स्त्री-संसर्ग से अधः पतन हो जाता है ।

भगवान महावीर प्रभु की 6 छठी पाटपरंपरा में हुए संभूति विजय महामुनि 14 पूर्वधर महर्षि थे । उनके शिष्य स्थूलभद्र महामुनि ने कोशा वेश्या के यहाँ चातुर्मास करने के लिए अनुज्ञा मांगी तो अपने ज्ञान के बल से स्थूलभद्र को योग्य जानकर उन्हें दीक्षा के लिए अनुमति प्रदान कर दी । स्थूलभद्र मुनि ने कोशा वेश्या को प्रतिबोध किया और वह व्रतधारिणी श्रेष्ठ श्राविका बनी !

चातुर्मास पूर्ण कर जब स्थूलभद्र महामुनि अपने गुरुदेव के पास पधारे तब गुरुदेव ने स्त्रीपरिषह विजेता ब्रह्मचर्य सम्राट् स्थूलभद्र महामुनि का `दुष्कर अतिदुष्करकारक' कहकर अपने आसन से खड़े होकर स्वागत किया ।

स्थूलभद्र के इस सम्मान को सिंहगुफावासी आदि मुनि सहन नहीं कर पाए ।

अगले वर्ष गुरुदेव के वचन की उपेक्षा, अवज्ञा करके भी सिंहगुफा-वासी मुनि कोशावेश्या के यहाँ चातुर्मास के लिए गए ।

एक ओर गुरुदेव का आशीर्वाद उनके साथ नहीं था । स्त्री-परिषह को सामने से खड़ा करने की प्रभु आज्ञा नहीं थी, फिर भी **गुर्वाज्ञा की अवज्ञा कर**

कोशावेश्या के वहाँ गए । यद्यपि वे स्त्री आदि के संग का त्याग कर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करनेवाले और चार-चार मास की दीर्घ तपश्चर्या करनेवाले कठोर तपस्वी महात्मा थे, परंतु कोशा वेश्या के अद्‌भुत रूप-सौंदर्य और उसकी देहलता को देखकर उनका मन **विह्वल** हो गया । कोशा वेश्या के संग को पाने के लिए वे लालायित हो उठे ।

उन्हें प्रतिबोध करने की भावना से ही कोशा वेश्या ने उन्हें कहा, **``मैं आपको अपना दूंगी परंतु आप मुझे क्या देंगे ?''**

महात्मा ने कहा, **``मेरे पास तो कुछ नहीं है ।''** वेश्या ने कहा, **``नेपाल देश के राजा के पास जाओ, वह तुम्हें 1 लाख रु. की कींमतवाला रत्नकंबल भेंट देगा, वह तुम ले आओ ।''**

कामवासना के गुलाम बने सिंहगुफावासी मुनि ने कोशा वेश्या की वह शर्त स्वीकार की और वर्षा काल में भी विहार कर नेपाल चले गए । वहाँ जाकर राजा के पास से रत्नकंबल लेकर वे कोशा वेश्या को देने लगे ।

तत्काल ही कोशा वेश्या ने वह रत्नकंबल गटर में फेंक दिया ।

वेश्या की इस चेष्टा को देख मुनि को खूब आश्चर्य हुआ ।

मुनि के कारण पूछने पर वेश्या ने कहा, ``तुम इस रत्नकंबल की चिंता करते हो, परंतु रत्नकंबल तुल्य आत्मा की चिंता नहीं करते हो ।''

``रत्नकंबल तो तुच्छ है, परंतु अशुचिमय मेरे देह में आसक्त होकर अपनी उज्ज्वल आत्मा को क्यों नष्ट कर रहे हो ?''

वेश्या के इन वचनों को सुनकर मुनि की आत्मा एकदम जागृत हो गई । उनका रोम रोम पश्चाताप से भर आया । कोशा वेश्या का आभार मानते हुए उन्होंने पाप से मलिन बनी आत्मा का प्रक्षालन किया, जिसके फलस्वरूप वे पुनः शुद्ध हो गए ।

भूतकाल का इतिहास पढ़ेंगे तो मालूम पड़ेगा कि अच्छे-अच्छे महातपस्वी और महान् ज्ञानी आत्माओं का भी अधः पंतन स्त्रियों के कारण हुआ है ।

स्त्री का संसर्ग अच्छे-अच्छे का भी पतन करा देता है ।

असाढ़ाभूति, नंदिषेण, कुलबालक मुनि आदि अनेक त्यागी-तपस्वी ज्ञानी महामुनियों का भी पतन स्त्री-संसर्ग के कारण हो गया था ।

सव्वगंथ विमुक्को, सीईभूओ पसंतचित्तो य ।
जं पावइ मुत्तिसुहं, न चक्कवट्टी वि तं लहइ ।।46।।

शब्दार्थ :

सव्वगंथ-**सभी प्रकार की ग्रंथियों से**	मुत्तिसुहं-**मुक्ति सुख का**
विमुक्को-**मुक्त**	न-**नहीं**
सीईभूओ-**शीतल और**	चक्कवट्टी वि-**चक्रवर्ती को भी**
पसंतचितो य-**प्रशांत चित्तवाला साधु**	तं-**वह सुख**
जं-**जिस**	लहइं-**प्राप्त करता है ।**
पावइ-**अनुभव करता है**	

भावार्थः- ***सभी प्रकार की ग्रंथियों से मुक्त, शीतल व प्रशांत चित्तवाला साधु जिस मुक्तिसुख का अनुभव करता है, वह सुख चक्रवर्ती को भी प्राप्त नहीं है ।***

विवेचन : धन, धान्य, क्षेत्र, गृह, सोना, चांदी, बर्तन, नौकर चाकर और हाथी-घोड़े आदि पशु, ये बाह्य परिग्रह के 9 प्रकार हैं । मिथ्यात्व, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा तथा क्रोध-मान-माया और लाभ ये 14 अभ्यंतर परिग्रह कहलाते हैं ।

बाह्य और अभ्यंतर परिग्रह से जो मुक्त हो चुके हैं, उन्हें निर्ग्रंथ कहते हैं ।

निर्ग्रंथ, प्रशांत और प्रसन्न बना मुनि जिस मुक्तिसुख का अर्थात् आत्मा की सच्ची स्वतंत्रता के परम सुख का अनुभव करता है, वह सुख तो चक्रवर्ती को भी सुलभ नहीं है ।

चक्रवर्ती के पास बाह्य भौतिक पदार्थों की कोई कमी नहीं होती है ।

चक्रवर्ती, रूप और लावण्य से युक्त 64000 देवांगनाओं जैसी राज-कन्याओं का अधिपति होता है ।

32000 मुकुटबद्ध राजा उसके चरणों में नतमस्तक होते हैं ।

84 लाख घोड़े, 84 लाख हाथी, 84 लाख रथ और 96 करोड़ गाँवों का वह अधिपति होता है ।

वह देवता-अधिष्ठित चौदह रत्नों और नौ महानिधियों के स्वामी होते हैं ।

इतनी-इतनी भौतिक समृद्धि का मालिक चक्रवर्ती भी जिस सुख का अनुभव नहीं करता है, उस सुख का अनुभव बाह्य-अभ्यंतर परिग्रह से सर्वथा मुक्त और कषाय-इन्द्रियों का विजेता मुनि करता है ।

'ज्ञानसार अष्टक' में **पू. यशोविजयजी म.** ने ठीक ही कहा है —

भूशय्या-भैक्षमशनं, जीर्णं वासो वनं गृहं ।
तथापि निःस्पृहस्याहो चक्रिणोप्यधिकं सुखम् ।।

भूमि पर शयन करनेवाले, भिक्षा मात्र से अपना जीवन निर्वाह करनेवाले, जीर्ण वस्त्र धारण करनेवाले और वन को ही अपना घर माननेवाले ऐसे निःस्पृही मुनि को चक्रवर्ती से भी अधिक सुख होता है ।

भौतिक समृद्धि से सर्वथा रहित मुनि को जो सुख होता है, वह अभ्यंतर सुख होता है ।

अभ्यंतर सुख के आगे बाह्य सुख की कोई कीमत नहीं है ।

संतान के कर्त्तव्य

सुबह उठकर माता–पिता को प्रणाम करे और माता–पिता स्वर्गस्थ हो तो उनकी तस्वीर को प्रणाम करे ।

माता–पिता कोई कार्य बनाए, तो इन्कार न करे । स्वयं से वह कार्य संभव न हो तो विनय पूर्वक निषेध करे ।

खेलंमि पडिअमप्पं, जह न तरइ मच्छिआ विमोएउं ।
तह विसयखेलपडिअं, न तरइ अप्पंमि कामंधो ।।47।।

शब्दार्थ :

खेलंमि-**श्लेष्म में**	तह-**उसी प्रकार**
पडिअमप्पं-**गिरी हुई**	विसयखेल-**विषय रूपी श्लेष्म में**
जह-**जिस प्रकार**	पडिअं-**गिरकर**
न तरइ-**समर्थ नहीं होती है**	न तरइ-**समर्थ नहीं हो पाता है**
मच्छिआ-**मक्खी**	अप्पंमि-**अपनी आत्मा को**
विमोएउं-**बचने के लिए (उद्धार करने में)**	कामंधो-**कामांध पुरुष भी**

भावार्थः- जिस प्रकार श्लेष्म में गिरी हुई मक्खी उसमें से बचने के लिए समर्थ नहीं होती है, उसी प्रकार कामांध पुरुष भी विषय रूपी श्लेष्म में गिरकर अपनी आत्मा का उद्धार करने में समर्थ नहीं हो पाता है ।

विवेचन : शक्कर पर बैठी हुई मक्खी शक्कर का स्वाद भी ले सकती है और जब चाहे उड़ भी सकती है, जबकि नाक के मैल-श्लेष्म पर बैठी हुई मक्खी को न तो कोई स्वाद आता है और न ही श्लेष्म में फंसने के बाद वह बाहर निकल सकती है । उसको वहाँ मौत मरना ही पड़ता है ।

काम में अंध बने व्यक्ति की भी यही हालत होती है ।

आत्मा के छह अंतरंग शत्रु हैं । उनमें सबसे पहला और भयंकर शत्रु काम ही है । विषय-वासना के जाल में फँसा व्यक्ति कामांध बन जाता है । कामांध व्यक्ति के विवेकचक्षु पर आवरण आ जाता है । जिसके विवेकचक्षु बंद हो गए, उसके सोचने-समझने की दृष्टि लुप्त हो जाती है । वह अपने भविष्य का विचार नहीं कर पाता है । वह कर्तव्य-अकर्तव्य, भक्ष्य-अभक्ष्य, पेय-अपेय आदि के विवेक को खो बैठता है ।

कामांध बना व्यक्ति अपनी माँ को पत्नी और पत्नी को माँ समझ बैठता है ।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के यहाँ चक्रवर्ती का भोजन करनेवाले ब्राह्मण की क्या दशा हुई ? गरिष्ठ भोजन को नहीं पचा पाने के कारण वह कामांध बन गया । माँ-बहन व पत्नी के भेद को भूल गया । नहीं करने योग्य काम कर बैठा ।

जं लहइ वीअराओ, सुक्खं तं मुणइ सुच्चिय न अन्नो ।
न हि गत्ता सूअरओ, जाणइ सुरलोइअं सुक्खं ।।48।।

शब्दार्थ :

जं-**जिस**	न अन्नो-**अन्य को नहीं**
लहइ-**अनुभव करती है**	न हि-**नहीं होता है**
वीअराओ-**राग रहित आत्मा**	गत्ता-**गंदगी में पड़े**
सुक्खं-**सुख का**	सूअरओ-**सूअर को**
तं-**उस सुख का**	जाणइ-**बोध**
मुणइ-**पता होता है**	सुरलोइअं-**देवलोक में रहे**
सुच्चिय-**उन्हें ही**	सुक्खं-**सुखों का**

भावार्थः- राग रहित आत्मा जिस सुख का अनुभव करती है, उस सुख का उन्हें ही पता होता है । गंदगी में पड़े सूअर को देवलोक में रहे सुखों का बोध नहीं होता है ।

विवेचन : जंगल में रहनेवाले आदिवासी भील को राजमहलों के सुख की कल्पना भी कहाँ से होती है ।

जिसने कभी गुड़राब को छोड़ अन्य किसी मिष्टान्न का स्वाद नहीं लिया हो, उसे गुलाबजामुन के स्वाद-सुख की कल्पना भी कहाँ होती है ?

बस, इसी प्रकार पाँच इन्द्रियों के विषय-सुखों के राग के त्याग से जिस सुख का अनुभव होता है, उस सुख की कल्पना विषयरागी को कहाँ से हो सकती है ।

हमेशा गंदे नालों में ही आलोटने वाले और गंदी वस्तु ही खानेवाले सूअर को देवलोक में रहे देवताओं के दिव्य सुखों की कल्पना भी कैसे हो सकती है ? अर्थात् नहीं हो सकती है ।

कुए में रहा मेंढ़क विशाल समुद्र की कल्पना भी कैसे कर पाता है ?

जं अज्जवि जीवाणं, विसएसु दुहासवेसु पडिबंधो ।
तं नज्जइ गुरुआण वि, अलंघणिज्जो महामोहो ।।49।।

शब्दार्थ :

जं-**जो**	तं-**उससे**
अज्जवि-**आज भी**	नज्जइ-**पता चलता है**
जीवाणं-**जीवों को**	गुरुआण वि-**बड़ों के लिए भी**
विसएसु-**विषयों में**	अलंघणिज्जो-**कठिन है, अलंध्य है ।**
दुहासवेसु-**दुःखों को लानेवाले**	महामोहो-**महामोह को**
पडिबंधो-**प्रतिबंध**	

भावार्थः- दुःखों को लानेवाले विषयों में आज भी जीवों को जो राग है, उससे पता चलता है कि महामोह को जीतना बड़ों के लिए भी कठिन है ।

विवेचन : मोह खूब भयंकर है, उसे जीतना या वश में करना बहुत ही कठिन है । वर्षों तक शास्त्रों का अभ्यास किया हो, वर्षों तक शास्त्रों का श्रवण किया हो, शास्त्र के बल से जाना भी हो कि पाँच इन्द्रियों के ये विषय दुःख को लानेवाले हैं फिर भी आश्चर्य है कि इन विषयों का त्याग बहुत ही कठिन है ।

पांच इन्द्रियों के विषयों का परिणाम अत्यंत ही भयंकर है । विषय तो विष से भी अधिक भयंकर हैं । विष तो खानेवाले को ही मारता है, जबकि ये विषय तो भोगनेवाले को तो मारते ही हैं, स्मरण करनेवाले को भी मारते है ।

विष खाने से व्यक्ति एक ही बार मरता है, जबकि ये विषय तो आत्मा को अनेक भवों तक मारते रहते है । ये विषय आत्मा को दीर्घ संसारी बना देते हैं ।

किसी ने ठीक ही कहा है-

'अक्खाण रसणी कम्माण मोहणी, हंत वयाण बंभवयं ।
गुत्तीण व मणगुत्ती, चउरो दुक्खेहिं जिप्पंति ।।'

अर्थ : पाँच इन्द्रियों में रसनेन्द्रिय, आठ कर्मों में मोहनीय, पाँच व्रतों में ब्रह्मचर्यव्रत और तीन गुप्तियों में मनगुप्ति को बड़ी मुश्किल से जीता जाता है ।

मोहनीय कर्म को आठ कर्मों का राजा कहा गया है । राजा को जीतने पर राज्य को जीता ही माना जाता है । बस, जिस आत्मा ने मोहनीयकर्म को जीत लिया, वह शीघ्र ही आठों कर्मों को जीत लेता है ।

आठ कर्मों में मोहनीय ही भयंकर है । मोहनीय कर्म को मदिरा की उपमा दी गई है । जिस प्रकार नशे में चकचूर व्यक्ति को यह भान नहीं होता है कि मैं क्या कर रहा हूँ और मुझे क्या करना चाहिए ? नशे में चकचूर व्यक्ति गंदे नाले में पड़ा हो तो भी यह मानता है कि मैं तो डनलप की गद्दी पर सोया हूँ ।

कुत्ता आकर शराबी के मुँह में पेशाब कर देता है तो भी वह कहता है- ``यह तो मैं पेप्सी पी रहा हूँ ।''

बस, इसी प्रकार जिस आत्मा को मोह का नशा चढ़ा होता है, वह आत्मा सुख के कारणों को दु:ख रूप मानती है और दु:ख के कारणों को सुख रूप समझती है ।

सामान्यतया तो यह देखा जाता है कि अज्ञानी व्यक्ति भूल करता है, परंतु सच तो यह है कि मोह के वशीभूत होकर अच्छे-अच्छे ज्ञानी महापुरुष भी भूल कर बैठते हैं ।

मोह भान भुलाता है । महाज्ञानी व्यक्ति को भी वह भ्रमित कर देता है ।

असाढ़ाभूति मुनि महाज्ञानी और लब्धिधर थे, परंतु रसनेन्द्रिय की आसक्ति ने उन्हे भी भान भुलाया और उनका चारित्र से पतन हो गया ।

नंदिषेण मुनि भी शास्त्रों के ज्ञाता थे, उनके पास भी अनेक प्रकार की लब्धियाँ थीं, परंतु वेश्या के कटाक्ष के जवाब में वे लब्धि का प्रयोग करने के लिए तैयार हो गए । उन्होंने अपनी लब्धि के बल से घास के तिनके को तोड़कर धन की वृष्टि की, जिसके फलस्वरूप वेश्या ने उन्हें वश में कर लिया । वे 12 वर्ष तक वेश्या के यहाँ रहे ।

संतान के कर्त्तव्य

जिस दिन तुम्हारे कारण माँ-बाप की आँखों में आँसू आते हैं, याद रखना उस दिन तुम्हारा किया सारा धर्म आँसू में बह जाता है ।

जे कामंधा जीवा, रमंति विसएसु ते विगयसंका ।
जे पुण जिणवयणरया, ते भीरु तेसु विरमंति ।।50।।

शब्दार्थ :

जे-**जो**	पुण-**फिर भी**
कामंधा-**कामांध पुरुष है**	जिणवयण-**जिनवचन में**
जीवा-**जीवो**	रया-**अनुरक्त हैं**
रमंति-**लीन होते हैं**	ते-**वे**
विसएसु-**विषयों में**	भीरु-**भीरु होकर**
ते-**वे**	तेसु-**विषयों से**
विगयसंका-**शंका रहित होकर**	विरमंति-**विराम पाते हैं ।**
जे-**जो**	

भावार्थ:- जो कामांध पुरुष हैं, वे शंका रहित होकर विषयों में लीन होते हैं और जो जिनवचन में अनुरक्त हैं, वे भीरु होकर विषयों से विराम पाते हैं ।

विवेचन : जो काम में अंध बन चुके हैं, ऐसे कामांध-पुरुष सतत पाँच इन्द्रियों के विषय भोगों में ही **आकंठ** डूबे रहते हैं । रात और दिन उन विषयभोगों के ही चिंतन में डूबे होते हैं, उन्हीं को पाने के लिए उनका सतत प्रयत्न होता रहता है ।

जबकि जिनेश्वर भगवंत के वचनों को सुनकर जिनकी मति भावित बनी है, ऐसी पाप भीरु आत्माएँ विषयों से विराम पाने के लिए ही प्रयत्नशील बनती हैं ।

उल्लू को दिन में दिखाई नहीं देता है और कौए को रात्रि में दिखाई नहीं देता है, जबकि कामांध तो विचित्र प्रकार का अंधा है । आँखें होते हुए भी उसको न दिन में दिखाई देता है और न रात में दिखाई देता है ।

कामांध व्यक्ति के पास चर्म चक्षु होने पर भी विवेक रूपी चक्षु का अभाव होता है । इस विवेक के अभाव के कारण कामांध व्यक्ति की आँखें वासनापूर्ति के लिए ही दौड़ रही होती हैं ।

महासती मदनरेखा के रूप में पागल बना मणिरथ मदनरेखा को अपने वश में करने के लिए अपने सगे भाई युगबाहु की भी हत्या कर देता है ।

दीर्घ राजा में मोहित बनी चुलनी माता अपने पुत्र ब्रह्मदत्त की भी हत्या करने का प्रयास करती है ।

पर-पुरुष में आसक्त बनी सूर्यकांता महारानी अपने ही पति को विष का प्याला पिला देती है और अपने पाप का भेद प्रगट न हो जाय, इसके लिए अपने ही पति की छाती पर चढ़ कर अपने हाथों से पति का गला भी दबोच देती है ।

कामांधता बहुत ही भयंकर वस्तु है ।

संतान के कर्त्तव्य

माता-पिता को वृद्धाश्रम में रखने वाले युवक ! जरा विचार कर कि उन्होंने तुझे अनाथाश्रम में नहीं रखा, उस भूल की सजा तो नहीं दे रहा ना ?

पत्नी मनपसंद मिल सकती है, माँ पुण्य से ही मिलती है । पसंद से मिलने वाली पत्नी के लिए, पुण्य से मिलने वाली माँ को मत ठुकराना ।

जिन बेटों के जन्म पर माँ बाप ने हँसी-खुशी से पेडे बाँटे, वही बेटे जवान होकर कानाफूसी से माँ बाप को डाँटे । हाय, कैसी करुणता !

असुइ मुत्त-मल पवाहरुवयं, वंत-पित्त-वस-मज्ज फोफसं ।
मेअ-मंस-बहु करंडयं, चम्म-मित्त पच्छाइयं जुवइ अंगयं ।।51।।
मंसं इमं मुत्त पुरीसमीसं, सिंघाण खेलाइअ-निज्झरंतं ।
एअं अणिच्चं किमिआण वासं, पासं नराणं मइबाहिराणं ।।52।।

शब्दार्थ :

असुर-**अशुचि**	पच्छाइयं-**ढका हुआ**
मुत्त-**मूत्र**	जुवइ-**स्त्रियों का**
मल-**मल**	अंगयं-**अंग**
पवाह-**प्रवाह**	मंसं-**मांस**
रुवयं-**रूप**	इमं-**यह**
वंत-**वमन**	मुत्त-**मूत्र**
पित्त-**पित्त**	पुरीसमीसं-**विष्ठा**
वस-**वसा**	सिंघाण-**नाक की मैल**
मज्ज-**मज्जा**	खेलाइअ-**कफ, बलगम**
फोफसं-**फेफसा**	निज्झरंतं-**बहते हुए**
मेअ-**मेद**	एअं-**इसे**
मंस-**मांस**	अणिच्चं-**अनित्य**
बहु-**बहुत**	किमिआण-वासं-**कृमियों का विकास क्षेत्र**
हड्डकरंडयं-**हड्डियों के करंडक रूप**	पासं-**पाश-बंधन**
चम्म-**चमड़ी**	नराणं-**मनुष्यों के**
मित्त-**मात्र से**	मइ बाहिराणं-**मतिबाह्य (पुरुषों) के**

भावार्थ:- अशुचि, मल-मूत्र के प्रवाह रूप, वमन, पित्त, वसा, मज्जा, फेफसा, मेद, मांस और हड्डियों के करंडक रूप चमड़ी से ढका हुआ, साक्षात् मांस के पिंड समान, मल-मूत्र से मिश्रित, श्लेष्म-कफ आदि अशुचि बहाने-वाला, अनित्य, कृमियों का निवास ऐसा युवती का शरीर मतिबाह्य पुरुषों के लिए बंधन ही है ।

विवेचन : ममता ही आत्मा के लिए जटिल बंधन है । लोहे की बेडियों को तोड़ना आसान है, परंतु ममता के जटिल बंधन को तोड़ना बहुत ही मुश्किल है । यद्यपि स्त्री का देह अशुचि का भंडार है । अशुचि का प्रवाह उसके शरीर में से सतत बहता रहता है, फिर भी आश्चर्य है कि मति-बाह्य पुरुष

अर्थात् बुद्धिहीन पुरुष उसी स्त्री में अत्यंत ही आसक्त हो जाते हैं ।

हाथी के लिए पानी, मछली के लिए जाल, हिरण के लिए जाल, पक्षी के लिए पाश (जाल) उसी तरह पुरुष के लिए स्त्री बंधन रूप है ।

स्त्री का देह अशुचि का भंडार है । उसमें से अशुचि का प्रवाह सतत बहता रहता है ।

स्त्री का देह अशुचि का भंडार होने पर भी काम में आसक्त पुरुष को उसमें अशुचि के दर्शन नहीं होते हैं ।

रामचरित मानस के रचयिता संत तुलसीदासजी पूर्वावस्था में अपनी पत्नी में अत्यधिक आसक्त थे ।

एक बार तुलसीदासजी को पूछे बिना ही उनकी पत्नी पीहर चली गई । तीव्र कामवासना के आवेग के कारण उनके लिए पत्नी का वियोग असह्य हो गया । वे नदी पारकर अपने ससुराल पहुँच गए और अपनी पत्नी से मिले ।

पत्नी ने ठपका देते हुए इतना ही कहा—

'अस्थि चर्ममय देह मम, ता में ऐसी प्रीति ।
होती यदि रघुनाथ में तो न होति भव भीति ।।'

बस, पत्नी के इन शब्दों ने उनकी सोई हुई आत्मा को जागृत कर दिया और वे पत्नी का त्याग कर रामभक्त संन्यासी बन गए ।

काम की आसक्ति बहुत ही भयंकर है । कामी व्यक्ति को परिणाम का विचार नहीं आता है । क्षणिक सुख की आसक्ति के परिणामस्वरूप मेरी आत्मा की क्या दुर्दशा होगी, इसका विचार कामी व्यक्ति को नहीं आता है ।

गटर में आलोटते हुए सूअर को गंदगी ही अच्छी लगती है, उसे गटर की गंदगी में भी दुर्गंध का अनुभव नहीं होता है, उसे वह दुर्गंध भी अच्छी ही लगती है ।

कामी व्यक्ति को स्त्री के देह में भी स्वर्गसुख का अनुभव होता है । अशुचि की ओर उसकी नजर नहीं होती है ।

संतान के कर्त्तव्य

संतान को जन्म तो पशु भी देते हैं परन्तु सच्चे माता पिता वही हैं जो अपनी संतानो को संस्कारों का भी दान करते हैं ।

पासेण पंजरेण य बज्झंति चउप्पया य पक्खी य ।
इअ जुवइपंजरेणं, बद्धा पुरिसा किलिस्संति ।।53।।

शब्दार्थ :

पासेण-**पाश द्वारा**	जुवइ-**युवती रूपी**
पंजरेण य-**पिंजरे द्वारा**	पंजरेणं-**पिंजरे में**
बज्झंति-**बंधन ग्रस्त किया जाता है**	बद्धा-**बद्ध**
चउप्पया य-**चतुष्पद और**	पुरिसा-**पुरुष**
पक्खी य-**पंखी को**	किलिस्संति-**क्लेश पाते हैं**
इअ-**उसी प्रकार**	

भावार्थ:- पाश द्वारा चतुष्पद और पिंजरे द्वारा पंखी को बंधन ग्रस्त किया जाता है, उसी प्रकार युवती रूपी पिंजरे में बद्ध पुरुष क्लेश पाता है ।

विवेचन : सिंह अत्यंत ही पराक्रमी होता है । जंगल का राजा कहलाता है, अत्यंत ही क्रूर होता है । अपने तीक्ष्ण नखों से हाथी के गंडस्थल को भी फाड़ डालता है । परंतु ऐसे शक्तिशाली सिंह को भी मनुष्य अपनी बुद्धि के बल से पिंजरे का वासी बना देता है ।

सर्कस में जब सिंह पिंजरे में बँधा होता है, तब कितना कमजोर दिखाई देता है । वह अपनी इच्छानुसार कुछ भी नहीं कर पाता है ।

जिस प्रकार उसे नचाया जाता है, उस प्रकार उसे नाचना पड़ता है उसे गुलाम की तरह रहना पड़ता है । पिंजरे में बंद हो जाने के बाद उसकी सारी स्वतंत्रताएँ लुप्त हो जाती हैं । पूरी जिंदगी उसे गुलाम बन जाना पड़ता है ।

ऊंट, बैल, पाड़ा, कुत्ते आदि भी जब डोरी से बाँध दिये जाते हैं, तब अपनी इच्छानुसार वे कुछ भी करने में असमर्थ हो जाते हैं । उन्हें भी पूरी जिंदगी गुलामी में बितानी पड़ती है ।

महाकाय हाथी भी जब बंधन ग्रस्त बनता है, तब वह भी जिंदगी भर के लिए गुलाम बन जाता है । पूरी जिंदगी उसे महावत के अधीन प्रसार करनी पड़ती है ।

पशु की तरह पंखियों की भी यही हालत होती है ।

नील गगन में स्वतंत्र उड्डयन करने का इच्छुक पोपट जब पिंजरे में बंद हो जाता है, तब उसकी सारी स्वंतत्रता लुप्त हो जाती है । जिंदगी भर उसे गुलामी सहन करनी पड़ती है ।

इसी प्रकार युवती के जाल में फँसा हुआ पुरुष भी नाना प्रकार की विडंबनाओं को प्राप्त करता है ।

पुरुष के लिए स्त्री भी एक जाल ही है । संसार के भोग-सुखों से विरक्त बने हुए सुबाहुकुमार को अपनी ही स्त्रियाँ नागिन जैसी लगती हैं ।

वे कहते हैं-`घर में एक नागिन हो तो भी घर में रहना मुश्किल हो जाता है तो जिसके घर में 500 नागिनें हों तो वह सुख पूर्वक कैसे रह सकता है ?

संतान के कर्त्तव्य

जगत्वंद्य, जगत् पूज्य श्री तीर्थंकर परमात्मा भी अपने उपकारी माता-पिता के औचित्य का अवश्य पालन करते हैं ।

मंगलसूत्र को बेच कर भी तुम्हें बड़ा करने वाले माँ-बाप को ही घर से निकालनेवाले ! तुम अपने जीवन में अमंगल शुरू कर रहे हो ।

अपने वृद्ध माता-पिता की जो सेवा नहीं करता है, उसकी समाज-सेवा या राष्ट्र-सेवा का कोई मूल्य नहीं है ।

अहो मोहो महामल्लो, जेणं अम्हारिसा वि हु ।
जाणंता वि अणिच्चत्तं, विरमन्ति न खणं पि हु ।।54।।

शब्दार्थ :

अहो-**आश्चर्य है कि**	वि-**भी**
मोहो-**मोह**	अणिच्चत्तं-**अनित्यत्व को**
महामल्लो-**महामल्ल है**	विरमन्ति-**विराम पाते हैं**
जेणं-**जिस कारण**	न-**नहीं**
अम्हारिसा-**हमारे जैसे**	खणंपि-**क्षणभर के लिए**
वि हु-**भी**	हु-**भी**
जाणंता-**जानते हुए**	

भावार्थः- आश्चर्य है कि मोह महामल्ल (का इनका प्रभाव) है, कि जिस कारण अनित्यत्व को जानते हुए भी हमारे जैसे भी स्त्रियों के संग से क्षण भर के लिए भी विराम नहीं पाते हैं ।

विवेचन : संसार की अनित्यता, असारता या क्षणभंगुरता का जिन्हें भान नहीं है, ऐसे जीव संसार के सुखों में तीव्र आसक्त बनें, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, परंतु जो संसार की अनित्यता को अच्छी तरह से जानते हैं, ऐसे जीव भी संसार से विरक्त नहीं होते हैं, सचमुच, यह महामोह का पराक्रम ही है ।

इस महामोह ने अज्ञानी जीवों को तो पतन के गर्त में डाला ही है, परंतु कई ज्ञानी पुरुष भी पतन के गर्त में गिरे हैं ।

असाढाभूति, नंदिषेण या रथनेमि आदि मुनियों का चारित्रिक पतन हुआ तो क्या वे अज्ञानी थे ? नहीं ! शास्त्रों के ज्ञाता और अनेक लब्धियों के धारक होने पर भी उन आत्माओं का जो पतन हुआ, उसका कारण महामोह का पराक्रम ही है ।

मोह का जोर होने पर ज्ञानी आत्माओं का भी पतन हो जाता है ।

जुवइहि सह कुणंतो संसग्गिं कुणइ सयलदुक्खेहिं ।
न हि मूसगाण संगो, होइ सुहो सह...बिडालाहिं ।।55।।

शब्दार्थ :

जुवइहि-**युवती के**	न हि-**कभी नहीं**
सह-**साथ**	मूसगाण-**चूहे को**
कुणंतो-**करनेवाला**	संगो-**संसर्ग**
संसग्गिं-**संसर्ग**	होइ-**होता है**
कुणइ-**करता है**	सुहो-**सुखकारक**
सयल-**सभी**	सह-**साथ**
दु:क्खेहिं-**दु:खों के साथ**	बिडालाहिं-**बिल्ली के**

भावार्थ:- युवती के साथ संसर्ग करनेवाला सभी दु:खों के साथ संसर्ग करता है । चूहे को बिल्ली के साथ संसर्ग कभी सुखकारक नहीं होता है ।

विवेचन : बिल्ली के संपर्क में चूहे की सुरक्षा नहीं है । चूहे को देखते ही बिल्ली उसे खा जाती है । चूहा यदि बिल्ली से दोस्ती करने जाय तो उसे मौत का ही शिकार होना पड़ता है ।

बस, इसी प्रकार युवती के संसर्ग में अति परिचय के साधक पुरुष का शील सुरक्षित नहीं रह पाता है ।

चूहे की सुरक्षा तो बिल्ली से दूर ही रहने में है इसी प्रकार संयमी-साधक की सुरक्षा स्त्री से सर्वथा दूर ही रहने में है ।

अन्य व्रतों की अपेक्षा ब्रह्मचर्यव्रत की सबसे अधिक महिमा है । इसी कारण इस व्रत की रक्षा के लिए नौ बाड़ का विधान किया गया है ।

पहले नंबर पर साधु को स्त्री से सर्वथा दूर ही रहने का है । अनिवार्य कारणवश साधु को स्त्री से बात करनी पड़े तो भी साधु की नजर तो नीची ही होनी चाहिए । स्त्री के रूप, सौंदर्य आदि को घूरकर देखने से साधु का पतन ही होता है ।

हरिहर चउराणण, चंदसूरखंदाइणो वि जे देवा ।
नारीण किंकरत्तं, कुणंति धिद्धी विसयतिण्हा ।।56।।

शब्दार्थ :

हरिहर-**हरि, हर**	किंकरत्तं-**किंकरपना**
चउराणण-**ब्रह्मा, चतुरानन**	कुणंति-**करते हैं**
चंदसूर-**चंद्र, सूर्य**	धिद्धी-**धिक्कार हो**
खंदाइणो वि-**स्कंदादि (कार्तिकयादि)**	विसय-**विषय**
जे देवा-**देव भी**	तिण्हा-**तृष्णा को**
नारीण-**नारी का**	

भावार्थः- हरि, हर, ब्रह्मा, चंद्र, सूर्य तथा स्कंद आदि देव भी नारी का किंकरपना करते हैं । सचमुच, विषय तृष्णा को धिक्कार हो ।

विवेचन : अनादि काल से आत्मा में घर कर गई मैथुन संज्ञा से देवलोक में रहे देवता भी बचे नहीं हैं ।

देवलोक में रहे देवता भी मैथुन संज्ञा के अधीन हैं ।

भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और सौधर्म व ईशान नाम के वैमानिक देवलोक में रहे देवता मनुष्य की तरह काया से मैथुन सेवन करते हैं ।

तीसरे व चौथे वैमानिक देवलोक के देवता स्पर्श से, पांचवें-छठे देवलोक के देवता रूप-दर्शन से सातवें-आठवें देवलोक के देवता शब्द से, तथा 9 से 12 तक के वैमानिक देवता मन से विषय का भोग करते हैं ।

12 वें देवलोक के ऊपर के नौ ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर के देवता मैथुन का सेवन नहीं करते हैं । मैथुन सेवन के अभाव से भी वे परम आनंद का अनुभव करते हैं ।

लोक में प्रसिद्ध जो हरि अर्थात् विष्णु, हर अर्थात् महादेव, चतुरानन अर्थात् ब्रह्मा तथा चंद्र, सूर्य, स्कंद आदि जो प्रसिद्ध देव हैं, वे भी काम के अधीन हैं ।

सीअं च उण्हं च सहंति मूढा, इत्थीसु सत्ता अविवेअवंता ।
इलाइपुत्तव्व चयंति जाइ, जीअं च नासंति य रावणुव्व ।।57।।

शब्दार्थ :

सीअं च-**ठंडी और**	इलाइपुत्तव्व-**इलाचीपुत्र की तरह**
उण्हं च-**गर्मी को**	चयंति-**त्याग करते हैं**
सहंति-**सहन करते हैं**	जाइ-**जाति का**
मूढा-**मूढ़ पुरुष**	जीअं च-**जीवन का**
इत्थीसु-**स्त्रियों में**	नासंति य-**भी नाश करते हैं**
सत्ता-**आसक्त ऐसे**	रावणुव्व-**रावण की तरह**
अविवेअवंता-**अविवेकी**	

भावार्थ:- स्त्रियों में आसक्त ऐसे अविवेकी मूढ़ पुरुष ठंडी-गर्मी को सहन करते हैं । इलाचीपुत्र की तरह जाति का त्याग करते हैं और रावण की तरह जीवन का भी नाश करते हैं ।

विवेचन : स्त्री के रूप-सौंदर्य का पिपासु बना हुआ और उसके भोग में आसक्त पुरुष क्या क्या सहन नहीं करता है !

ठंडी-गर्मी एवं अन्य सभी प्रकार के कष्ट वह सहन करता है । इसके लिए इलाचीपुत्र का दृष्टांत सुप्रसिद्ध है ।

स्थविर मुनि के पास पत्नी सहित किसी ब्राह्मण ने भागवती-दीक्षा अंगीकार की । उन्होने उग्रतप द्वारा चारित्र धर्म का कठोरता से पालन किया, परंतु उनके परस्पर की प्रीति कम नहीं हुई ।

दीक्षा अंगीकार करने के बाद भी ब्राह्मण पत्नी को अपनी जाति का गर्व था । मृत्यु प्राप्तकर दोनों देवलोक में गए ।

देवलोक में अपने दीर्घ आयुष्य को पूर्ण कर वह ब्राह्मणदेव इलावर्धन नगर में सार्थवाह की पत्नी की कुक्षि में पुत्र के रूप में पैदा हुआ । ईलादेवी की उपासना से पुत्र की प्राप्ति होने से बालक का नाम `इलाचीपुत्र' रखा गया ।

ब्राह्मणदेव की पत्नी अपने जाति गर्व के कारण देवलोक में से च्यवकर नटकुल में पुत्री के रूप में पैदा हुई ।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा । इलाचीकुमार ने यौवनवय में प्रवेश

किया । एक बार उसने उस नट कन्या को देख लिया और वह कामातुर हो उठा । किसी भी उपाय से किसी भी शर्त पर वह उस नट कन्या को पाने के लिए तैयार हो गया ।

नटकन्या के पिता ने कहा, ``यदि तुम हमारी नाट्यकला सीखकर राजा से इनाम प्राप्त करो तो मैं अपनी पुत्री तुम्हें दे सकता हूँ ।''

इलाचीकुमार ने यह शर्त स्वीकार की । सार्थवाह समृद्ध और उच्च-कुल का था, फिर भी अपने कुल की उपेक्षा करके भी वह इलाचीपुत्र नटों के साथ रहने के लिए तैयार हो गया । धीरे-धीरे वह नाट्यकला में निष्णात बना । एक दिन राजदरबार में वह अपनी नाट्यकलाओं का प्रदर्शन करने लगा, परंतु उसी नटकन्या में मुग्ध बने राजा ने उसे कुछ भी इनाम नहीं दिया, बल्कि राजा भी उसकी मौत की इच्छा करने लगा ।

उसी समय डोरी पर नृत्यकला कर रहे इलाचीकुमार ने सामने की हवेली में अत्यंत रूपवती कन्या को देखा, जो युवा-मुनि को दान दे रही थी । युवा मुनि नीची दृष्टि कर गोचरी बहोर रहे थे ।

इस अद्‌भुत दृश्य को देख इलाचीकुमार सोच में पड़ गया । ``अहो ! मैं इस नटकन्या में पागल हूँ और ये मुनि देवांगना जैसी कन्या की ओर ऊँची नजर करके भी नहीं देख रहे हैं !'' बस, इसी विचार में से वे भावना में चढ़ गए और उन्हें वहीं पर केवलज्ञान हो गया ।

सार यही है कि इलाचीकुमार जैसा सार्थवाह पुत्र भी एक नटकन्या के राग के कारण नीच कुलवालों, नटों के साथ रहने के लिए तैयार हो गया । यह सब स्त्री की आसक्ति का ही परिणाम था ।

तीन खंड का अधिपति रावण जैसा पराक्रमी भी सीता के रूप में मोहित होने के कारण राम-लक्ष्मण के साथ भयंकर युद्ध करने के लिए भी तैयार हो गया और आखिर उस युद्ध में उसे बेमौत मरना भी पड़ा !

एक स्त्री की आसक्ति के कारण रावण दुनिया में भी बदनाम हो गया ।

वुत्तूण वि जीवाणं, सुदुक्कराइं ति पावचरियाइं ।
भयवं जा सा सा सा, पच्चाएसो हु इणमो ते ।।58।।

शब्दार्थ :

वुत्तूण वि-**कहना भी**	भयवं-**भगवन्**
जीवाणं-**जीवों**	जा सा सा सा-**यह वही वही है**
सुदुक्कराइं-**अतिदुष्कर है**	पच्चाएसो-**दृष्टांत**
ति-**इत्यादि**	हु-**(पूरण अर्थमें)**
पाव-**पाप**	इणमो-**यहाँ**
चरियाइं-**चरित्र**	ते-**वह**

भावार्थः- जीवों के पाप चरित्र कहना भी अतिदुष्कर है । 'भयवं जा सा सा सा' यहाँ दृष्टांत है ।

विवेचन : एक स्त्री की आसक्ति के कारण पुरुष कौनसा पाप नहीं करता है ? इसके लिए यहाँ एक भील का दृष्टांत प्रसिद्ध है ।

भगवान महावीर प्रभु का समवसरण रचा हुआ था । तभी एक भील ने आकर संकेत की भाषा में प्रभु को पूछा, ``क्या वह, वही है ?'' प्रभु ने कहा, ``हाँ ।''

इतना सुनकर भील वहाँ से चला गया । आम जनता के प्रतिबोध के लिए गौतम स्वामी ने प्रभु को पूछा, ``हे प्रभो ! आपने क्या कहा ?'' उस समय प्रभु ने श्रोताओं के प्रतिबोध के लिए कहा—

`वसंतपुर में अनंगसेन नाम का सोनी रहता था । वह स्त्रियों में अति लुब्ध था । वह मुंहमांगा धन देकर कन्याओं को प्राप्तकर उन्हें अपनी पत्नी बना लेता था, इस प्रकार वह 500 स्त्रियों का पति हो गया ।

अपने परिभोग में आनेवाली स्त्री को छोड अन्य किसी स्त्री को वह वस्त्र-अलंकारों से अलंकृत नहीं होने देता था ।

एक बार वह सोनी किसी मित्र के घर गया हुआ था । यह अवसर देखकर वे सभी स्त्रियाँ स्नान-वस्त्र व आभूषणों से अलंकृत होकर दर्पण में अपना मुँह देखकर शणगार कर रही थी । तभी अचानक वह सोनी वहाँ आ गया ।

अपनी सभी स्त्रियों को सजधजकर तैयार देख, वह गुस्से में आ गया ।

गुस्से में आकर उसने अपनी एक स्त्री के मर्म स्थल पर दर्पण से प्रहार किया । तत्क्षण उस स्त्री की मृत्यु हो गई ।

उस एक स्त्री की मौत को देख अन्य स्त्रियों ने भी सोचा, हमारी भी यह दुर्दशा हो सकती है, ऐसा सोचकर सभी स्त्रियों ने एक साथ अपने पति पर दर्पणों से प्रहार किया, जिससे वह वहीं ढेर हो गया । पति की मृत्यु के बाद सभी ने अग्नि-प्रवेश कर जीवन समाप्त किया । वे सब सामुदायिक कर्म के कारण मरकर किसी पल्ली में चोर के रूप में पैदा हुईं ।

सोनी की पहली पत्नी मरकर किसी गाँव में बालक के रूप में और वह सोनी मरकर उस बालक की बहन के रूप में पैदा हुआ ।

पूर्वभव की वासना व अतिमोह के कारण वह बच्ची बार-बार रोती थी...तब अचानक उसके भाई बालक ने उसके गुह्य भाग का स्पर्श किया और वह चुप हो गई ।

बालक की कुचेष्टा को देख उसके माता-पिता ने उसे घर से निकाल दिया । वह आगे चोरों की उसी पल्ली में आ गया और चोरों का सरदार बन गया ।

वह कन्या (सुवर्णकार का जीव) भी बड़ी हो गई । यौवन वय में प्रवेश के साथ ही उसकी कामवासना तीव्र हो गई ।

एक बार वह कन्या किसी गांव में गई, जहाँ पर वे सभी चोर, चोरी के लिए आए थे । पूर्व भव के स्नेह के कारण वह भी उनके साथ चली गई और सभी चोरों की पत्नी बन गई । सभी चोर बारी-बारी से उसका भोग करने लगे ।

एक बार वे चोर किसी एक दूसरी स्त्री को ले आए तो ईर्ष्यावश उस पहली स्त्री (सुवर्णकार का जीव) ने उस स्त्री को किसी कुए में डालकर मरवा दिया ।

अपनी स्त्री की उत्कट कामवासना को देख वह पल्लीपति सोचने लगा, ``यह मेरी बहिन तो नहीं है ?''

बस, अपनी इस शंका के समाधान के लिए ही वह भील मेरे पास आया था । उसने पूछा, ``क्या वह जो मेरी बहन थी, वही तो यह मेरी पत्नी नहीं है ?''

मैंने कहा, ``हाँ, यह वही है ।'' यह जानकर उसे बड़ा खेद हुआ ।

प्रभु के मुख से इस कथानक को सुनकर अनेक व्यक्तियों को प्रतिबोध हुआ ।

संसार की यह कैसी विचित्रता है ? यहाँ स्त्री मरकर पुरुष के रूप में पैदा होती है और पुरुष मरकर स्त्री के रूप में भी पैदा हो जाता है ।

जल लव तरलं जीअं, अथिरा लच्छी वि भंगुरो देहो ।
तुच्छा य कामभोगा, निबंधणं दुक्खलक्खाणं ।।59।।

शब्दार्थ :

जललव-**जल के बिंदु के समान**	तुच्छा-**तुच्छ है**
तरलं-**चंचल है**	य-**भी**
जीअं-**जीवन**	कामभोगा-**कामभोग**
अथिरा-**अस्थिर है**	निबंधणं-**कारण है**
लच्छी वि-**लक्ष्मी भी**	दुक्ख-**दुःखों का**
भंगुरो-**नाशवंत है**	लक्खाणं-**लाखों**
देहो-**देह**	

भावार्थः- यह जीवन जल के बिंदु के समान चंचल है । लक्ष्मी भी अस्थिर है । देह नाशवंत है । कामभोग भी तुच्छ हैं और लाखों दुःखों का कारण है ।

विवेचन : घास के अग्र भाग पर रही पानी की एक बूंद का अस्तित्व कितने समय के लिए है ? हवा का एक झोंका आता है और उसका अस्तित्व सदा के लिए मिट जाता है अथवा सूर्य की एक किरण पड़ती है और उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है ।

बस, इसी प्रकार यह जीवन भी इतना ही क्षणभंगुर है । पलक झपकते ही यह जीवन समाप्त हो सकता है ।

इस संसार में लक्ष्मी भी अत्यंत ही चंचल है । आज आपके पास में संपत्ति है, परंतु कल भी वह संपत्ति आपके पास ही रहेगी, उसकी कोई गारंटी नहीं है ।

पाँच इन्द्रियों के काम-भोग अत्यंत ही तुच्छ हैं अर्थात् लाखों दुःखों को आमंत्रण देनेवाले हैं ।

विष से मिश्रित मिष्टान्न की भाँति ये कामभोग क्षण भर ही सुख देनेवाले हैं, परंतु उनका परिणाम तो विष की भाँति अत्यंत ही भयंकर है ।

नागो जहा पंकजलावसन्नो, दट्ठुं थलं नाभिसमेइ तीरं ।
एवं जिआ कामगुणेसु गिद्धा, सुधम्म मग्गे न रया हवंति ।।60।।

शब्दार्थ :

नागो-**हाथी**	एवं-**उसी प्रकार**
जहा-**जिस प्रकार**	जिआ-**जीवो**
पंकजला-**कीचड़ में**	कामगुणेसु-**कामभोगों में**
वसन्नो-**फँसा हुआ**	गिद्धा-**आसक्त बना हुआ**
दट्ठुं-**देखने पर**	सुधम्म-**सद्धर्म के**
थलं-**तट को**	मग्गे-**मार्ग में**
नाभिसमेइ-**प्राप्त नहीं कर पाता है**	न रया-**रत नहीं**
तीरं-**तट को**	हवंति-**हो पाता है**

भावार्थ:- जिस प्रकार कीचड में फँसा हुआ हाथी तट को देखने पर भी तट को प्राप्त नहीं कर पाता है, उसी प्रकार कामभोगों में आसक्त बना हुआ जीव सद्धर्म के मार्ग में रत नहीं हो पाता है ।

विवेचन : दलदल में फँसा हुआ हाथी ज्यों-ज्यों दलदल में से बाहर निकलने की कोशिश करता जाता है, त्यों-त्यों वह दलदल में अधिक-अधिक फँसता जाता है । वह स्थल-भूमि को अपनी आँखों के सामने देख रहा होता है, फिर भी उस तट को प्राप्त नहीं कर पाता है ।

कामभोगों में आसक्त जीव की भी हालत उसी हाथी की भाँति होती है । वह उन विषयों से छूटने के लिए ज्यों-ज्यों प्रयत्न करता जाता है, त्यों-त्यों वह उन विषयों के जाल में और अधिक डूबता जाता है ।

संतान के कर्त्तव्य

माता–पिता को दान देने की इच्छा हो तो उनकी भावना को पूरी करने की कोशिश करें ।

जह विट्ठ पुंज खुत्तो, किमी सुहं मन्नए सयाकालं ।
तह विसयासुइ रत्तो जीवो वि मुणइ सुहं मूढो ।।61।।

शब्दार्थ :

जह-**जिस प्रकार**	तह-**उसी प्रकार**
विट्ठ-**विष्ठा के**	विसयासुई-**विषय रूपी अशुचि में**
पुंज-**ढेर में**	रत्तो-**पड़ा हुआ**
खुत्तो-**रहा**	जीवो वि-**मनुष्य उसी में**
किमी-**कृमि**	मुणइ-**मानता है**
सुहं-**सुख**	सुहं-**सुख**
मन्नए-**मानता है**	मूढो-**मूर्ख**
सयाकालं-**हंमेशा**	

भावार्थ:- जिस प्रकार विष्ठा के ढेर में रहा कृमि हमेशा उसी में सुख मानता है, उसी प्रकार विषय रूपी अशुचि में पड़ा हुआ मूर्ख मनुष्य उसी में सुख मानता है ।

विवेचन : यद्यपि विष्ठा में अत्यंत ही दुर्गंध है, उसमें किसी भी प्रकार का सुख नहीं है, परंतु विष्ठा के कीड़े को उसी में आनंद आता है । उस कीड़े को यदि विष्ठा में से बाहर निकाल दिया जाय या दूध जैसे अच्छे पदार्थ में रख दिया जाय तो वह तड़प-तड़पकर बेमौत मर जाएगा ।

बस, पाँच इन्द्रियों के विषयों में आसक्त जीव की भी यही हालत होती है ।

पाँच इन्द्रियों में आसक्त जीव को त्याग-धर्म का उपदेश दिया जाय या उससे वे विषय छुड़ा दिए जाँय तो उसे तड़पन का अनुभव होता है ।

संतान के कर्त्तव्य

जिस घर में बाप और बेटे में, सास व बहू में सामंजस्य नहीं, उस घर का वातावरण कलुषित हुए बिना नहीं रहता ।

मयरहरो व जलेहिं, तह वि हु दुप्पूरओ इमो आया ।
विसया मिसंमि गिद्धो, भवे भवे वच्चइ न तत्तिं ।।62।।

शब्दार्थ :

मयरहरो व-**जिस प्रकार समुद्र**	विसया-**विषय रूपी**
जलेहिं-**जल से**	मिसंमि-**आमिष में**
तहवि हु-**उसी प्रकार**	गिद्धो-**आसक्त जीव**
दुप्पूरओ-**कभी तृप्त नहीं होता है**	भवे भवे-**प्रत्येक भव में**
इमो-**ये**	वच्चइ-**पाता है**
आया-**आत्मा**	न तत्तिं-**तृप्ति नहीं**

भावार्थः- जिस प्रकार समुद्र जल से कभी तृप्त नहीं होता है, उसी प्रकार विषय रूपी आमिष (भोग्य वस्तु) में आसक्त जीव भव-भव में तृप्ति नहीं पाता है ।

विवेचन : सागर में अमाप जलराशि होती है । हजारों नदियाँ आकर उसमें मिलती हैं, फिर भी वह सागर कभी जल से तृप्त नहीं होता है । चाहे जितना पानी आए, फिर भी वह सदैव अतृप्त ही रहता है ।

लवण समुद्र दो लाख योजन विस्तारवाला है । अमाप जलराशि उसमें रही हुई है, महाविदेह आदि क्षेत्रों में से हजारों नदियाँ लवण समुद्र में गिरती रहती हैं, परंतु उन नदियों के अमाप जल से भी वह सागर कभी तृप्ति का अनुभव नहीं करता है ।

इसी प्रकार इस आत्मा ने मनुष्य और देवलोक के भवों में पाँच इन्द्रियों के अनुकूल विषयों का खूब-खूब भोग किया है, परंतु इस आत्मा को आज तक कभी तृप्ति का अनुभव नहीं हो पाया है ।

सुबह पेट भर कर भोजन करने पर भी जैसे शाम को पेट खाली-खाली लगता है । मानों अभी तक कुछ खाया ही न हो, ऐसी अनुभूति होती है । बस, इसी प्रकार चाहे जितने दीर्घकाल तक संसार के सुख भोगे जाँय, आत्मा को सदैव अतृप्ति का ही अनुभव होता है ।

विसयवसट्टा जीवा, उब्भडरुवाइएसु विविहेसु ।
भव सय सहस्स दुलहं, न मुणंति गयंपि नियजम्मं ।।63।।

शब्दार्थ :

विसय-**विषयों की**	भव-**जन्मों में**
वसट्टा-**परतंत्रता से पीड़ित**	सयसहस्स-**लाखों**
जीवा-**जीव**	दुलहं-**दुर्लभ ऐसे**
उब्भड-**उद्‌भट**	न मुणंति-**नहीं देखते हैं**
रुवाइएसु-**रूपों में**	गयंपि-**गये हुए भी**
विविहेसु-**विविध**	नियजम्मं-**अपने जन्म को**

भावार्थः- विविध उद्‌भट रूपों में आसक्त तथा विषयों की परतंत्रता से पीड़ित जीव लाखों जन्मों में दुर्लभ ऐसे अपने गये हुए जन्म को भी नहीं देखते हैं ।

विवेचन : शास्त्रों में मानवजन्म को अत्यंत ही दुर्लभ बताया गया है । दश दृष्टांतों से यह जन्म दुर्लभ है । समुद्र में खोया हुआ चिंतामणि रत्न कदाचित् देव की सहायता से वापस मिल सकता है, परंतु एक बार खोया हुआ यह मानवजन्म पुनः प्राप्त होना अत्यंत ही दुर्लभ है ।

मनुष्य तो क्या देवताओं के लिए भी यह जन्म अतिदुर्लभ है । देवता असंख्य हैं, जबकि मनुष्य संख्यात हैं । अधिकांश देव मरकर तिर्यंच गति में चले जाते हैं और उसमें भी अधिकांश देव पृथ्वीकाय, अप्‌काय और वनस्पतिकाय रूप एकेन्द्रिय में चले जाते हैं, जहाँ से ऊपर उठना पुनः उनके लिए खूब कठिन हो जाता है ।

मनुष्य भव को छोड़ धर्म आराधना के लिए अवकाश ही कहाँ है ।

भौतिक सुख में लुब्ध होने के कारण देवता धर्म आराधना नहीं कर सकते हैं । भयंकर वेदना में डूबे हुए होने के कारण नारक जीव धर्म आराधना नहीं कर सकते हैं ।

अज्ञानता-पराधीनता व भूख के कारण तिर्यंच गति के जीव भी धर्म आराधना नहीं कर पाते हैं । परंतु एक मात्र धर्म आराधना के लिए हर तरह की अनुकूलता मनुष्य को ही प्राप्त हुई है ।

परंतु पाँच इन्द्रियों के क्षणिक व तुच्छ सुखों में आसक्त होने के कारण

और स्त्रियों के रूप-सौंदर्य में लुब्ध बनने के कारण मानव अपने व्यतीत हुए काल का भी विचार नहीं करता है ।

उम्र बढ़ती है, आदमी खुश होता है, परंतु सच तो यह है कि उम्र बढ़ नहीं रही है बल्कि घट रही है ।

ज्यों ज्यों समय बीतता है, अंजलि में रहा जल घटता ही जाता है, उसी प्रकार प्रतिक्षण मानव का आयुष्य घट ही रहा है ।

समय बीतने पर मानव के धन, पुत्र-परिवार, जमीन-जायदाद का Balance बढ़ सकता है, परंतु आयुष्य का Balance तो घटता ही है, विषयों में आसक्त बने मानव को यह सत्यबोध नहीं हो पाता है ।

मृत्यु की अंतिम वेला में जब मानव को सत्यबोध होता है, तब कुछ भी करने के लिए उसके पास समय नहीं होता है और जब कुछ करने की शक्ति होती है, तब तक वह सत्य समझ में नहीं आ पाता है ।

संतान के कर्त्तव्य

माँ-बाप की सच्ची विरासत पैसा और प्रसाद नहीं, प्रामाणिकता और पवित्रता है ।

माता-पिता के उपकार को नहीं माननेवाला कृतघ्न कहलाता है । ऐसा व्यक्ति इस पृथ्वी पर भारभूत है ।

चिट्ठंति विसयविवसा, मुत्तुं लज्जंपि के वि गयसंका ।
न गणंति के वि मरणं, विसयंकुस सल्लिया जीवा ।।64।।

शब्दार्थ :

चिट्ठंति-**रहते हैं**	न गणंति-**नहीं गिनते हैं**
विसय-**विषयों में**	के वि-**भी**
विवसा-**आसक्त होकर**	मरणं-**मृत्यु को**
मुत्तुं लज्जंपि-**निर्लज्ज बनकर**	विसयंकुस-**विषय रूपी अंकुश से**
के वि-**कई जीव**	सल्लिया-**शल्यवाले बने**
गयसंका-**निःशंक और**	जीवा-**जीव**

भावार्थः- कई जीव निःशंक और निर्लज्ज बनकर विषयों में आसक्त होकर रहते हैं । विषय रूपी अंकुश से शल्य वाले बने जीव मृत्यु को भी नहीं गिनते हैं ।

विवेचन : जिस व्यक्ति के जीवन में लज्जा गुण होता है, वह व्यक्ति अकार्य करते हुए घबराता है ।

कदाचित् अकार्य का प्रारंभ किया हो तो भी `अरे ! तुम ऐसा, करते हो !' इस प्रकार प्रेरणा करने पर लज्जालु व्यक्ति अकार्य का त्याग कर देता है, परंतु जो निर्लज्ज होता है उसे न तो अकार्य करते हुए शर्म आती है और न ही उसे अकार्य से भय लगता है । अकार्य के परिणाम की भी उसे कोई चिंता नहीं होती है ।

विषयों में आसक्त व्यक्ति जब निर्लज्ज होता है, तब उसे पाप का किसी प्रकार का भय नहीं होता है, वह निःशंक होकर पाप-प्रवृत्ति करता है ।

विषय में आसक्त व्यक्ति को मौत की भी परवाह नहीं होती है ।

जिसे मौत का ही भय न हो उसे परलोक की तो चिंता ही कहाँ से होगी ? जिसे परलोक की ही चिंता नहीं है, वह परमलोक की तो क्या चिंता करेगा ?

विषयों की आसक्ति बहुत ही भयंकर है । वह व्यक्ति को भान भुलाती है ।

जिस प्रकार साँप का जहर चढ़ा हो, उस व्यक्ति को नीम के कडवे पत्ते भी मीठे लगते हैं, उसी प्रकार मोह का जहर चढ़ा हो तो संसारी जीव को पाँच इन्द्रियों के विषय-सुखों में ही ज्यादा आनंद आता है ।

साँप का जहर उतर गया हो तो नीम के कड़वे पत्ते, कड़वे लगने

लगते हैं, उसी प्रकार जब आत्मा पर से मोह का ज्वर उतर जाता है, तब उस आत्मा से विषयों की आसक्ति दूर हो जाती है ।

श्लेष्म से आकर्षित बनी मक्खी को उसका स्वाद दिखता है, परंतु उसका भावी परिणाम मौत नजर नहीं आता है । बस, इसी प्रकार पाँच इन्द्रियों के विषय में आसक्त बने जीव को उससे प्राप्त होनेवाला क्षणिक सुख ही नजर आता है, परंतु उसके परिणाम स्वरूप आनेवाली मौत नजर नहीं आती है ।

योगशास्त्र ग्रंथ में मैथुन से उत्पन्न होने वाली दुर्दशा, का वर्णन करते हुए कहा हैं-

``मैथुन सेवन से कंपन, स्वेद (पसीना) थकावट, मूर्च्छा, चक्कर, ग्लानि, बल का क्षय, तथा क्षय (T.B.) आदि रोग उत्पन्न होते हैं ।''

संतान के कर्त्तव्य

जीवन के अँधेरे पथ में सूरज बन कर रोशनी करने वाले माँ-बाप की जिंदगी में अंधकार मत फैलाना ।

पुत्र के जन्म समय माँ-बाप ने मिठाई बाँटी थी, वे ही पुत्र बड़े होकर माँ-बाप का बँटवारा कर देते हैं ।

विसयवसेणं जीवा, जिणधम्मं हारिऊण हा नरयं ।
वच्चंति जहा-चित्तय निवारिओ बंभदत्तनिवो ।।65।।

शब्दार्थ :

विसयवसेणं-**विषय के वश से**	वच्चंति-**जाते हैं**
जीवा-**जीव**	जहा-**जिस प्रकार**
जिणधम्मं-**जिनधर्म को**	चित्तय-**चित्र मुनि**
हारिऊण-**हारकर**	निवारिओ-**रोका हुआ**
हा-**खेद है**	बंभदत्त निवो-**ब्रह्मदत्त राजा**
नरयं-**नरक में**	

भावार्थः- दुःख की बात है कि विषय के वश बने हुए जीव जिनधर्म को हारकर नरक में चले जाते हैं, जैसे चित्रक मुनि के द्वारा रोकने पर भी ब्रह्मदत्त राजा मरकर नरक में गया ।

विवेचन : चित्र और संभूति दोनों सगे भाई थे । दोनों ने दीक्षा अंगीकार की थी । हस्तिनापुर के चक्रवर्ती सनतकुमार की भोग-समृद्धि को देख संभूति मुनि ने चक्रवर्ती बनने का नियाणा कर लिया था । उस नियाणे के फलस्वरूप वह ब्रह्मदत्त नाम का चक्रवर्ती बना । चित्र मुनि ने निर्मल संयम धर्म का पालन किया और वे पुरिमताल नगर में श्रेष्ठीकुल में पुत्र के रूप में पैदा हुए । सद्गुरु के पास धर्म का श्रवण कर उन्होंने भागवती-दीक्षा अंगीकार की ।

एक बार वे महात्मा कांपिल्यपुर नगर में पधारे, वहीं पर ब्रह्मदत्त का भी आगमन हुआ । दोनों का परस्पर मिलन हुआ । दोनों एक-दूसरे को पहिचान गए ।

उसके बाद ब्रह्मदत्त ने मुनि को आमंत्रण देते हुए कहा, ``मैं पूर्व के भव में पालन किए गए चारित्र धर्म के फल का अनुभव कर रहा हूँ ! तुम भी इन नाच, गान, नृत्य, संगीत और स्त्री के भोग सुखों का अनुभव करो । मुझे तो यह प्रव्रज्या निश्चय ही दुःख रूप लग रही है ।''

चक्रवर्ती के मुख से इन वचनों को सुनकर चित्र मुनि ने कहा, `मुझे तो ये सारे गीत करुण विलाप रूप लगते हैं, सभी नृत्य विडंबना रूप लगते हैं तथा सभी आभूषण भाररूप लगते हैं । सभी कामभोग दुःखदायी लगते हैं ।''

काम से विरक्त तपस्वी और शीलगुण से युक्त साधुओं को जो सुख है, वह सुख कामभोगों में नहीं है ।

संसार के भौतिक सुख तो क्षणभंगुर हैं, अतः उन सुखों का त्यागकर तुम चारित्रधर्म को स्वीकार करो ।

जिस प्रकार सिंह मृग को खींचकर ले जाता है उसी प्रकार अंत समय में मृत्यु भी आत्मा को पकड़कर ले जाती है, उसी समय माता-पिता, भाई आदि कुछ भी सहायक नहीं बनते हैं ।

अपने किए हुए कर्मों की सजा आत्मा अकेली ही सहन करती है । परलोक में स्वजन-संबंधी कुछ भी काम नहीं लगते हैं ।

मुनि के इन आत्म-हितकर वचनों को सुनकर ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ने कहा, ``आपकी बात बिल्कुल सत्य है । परंतु भोगों में आसक्त ऐसे मेरे द्वारा इन सुखों का त्याग मुश्किल है ।''

``मैंने गत भव में यह अशुभ नियाणा कर लिया था, इस कारण धर्म को जानते हुए भी मैं कामभोगों में आसक्त हूँ ।''

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के इन वचनों को सुनकर, चित्र मुनि ने कहा, ``यदि तुम भोगों का त्याग करने में असमर्थ हो तो भी शुभ कर्म करना, प्राणियों पर दया भाव रखना ।'' इतना कहकर वे मुनि वहाँ से चले गए ।

मुनि के इन उपदेशों का पालन नहीं करने के कारण और आसक्ति पूर्वक भोग-सुखों में लीन रहने के कारण वह ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती मरकर 7वीं नरक में चला गया ।

जिस प्रकार चित्र मुनि के उपदेशों की उपेक्षा करने के कारण ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती नरक में चला गया, इसी प्रकार जो जीव कामभोगों में सदैव डूबे रहते हैं, वे स्वयं को प्राप्त जिनधर्म को हारकर नरक आदि दुर्गति में चले जाते हैं ।

धी धी ताण नराणं, जे जिणवयणामयं पि मोत्तूणं ।
चउ गइ विडंबणकरं, पिअंति विसयासवं घोरं ।।66।।

शब्दार्थ :

धी धी-**धिक्कार हो ! धिक्कार हो**	चउगइ-**चार गति**
ताण नराणं-**उन लोगों को**	विडंबणकरं-**विडंबना करानेवाले**
जे-**जो**	पिअंति-**पीते हैं**
जिणवयण-**जिनवचन**	विसय-**विषय**
अमयं-**अमृत**	आसवं-**मद्य**
पि-**भी**	घोरं-**भयंकर**
मोत्तूणं-**छोड़कर**	

भावार्थः- उन पुरुषों को धिक्कार हो, जो जिनवचन रूपी अमृत को छोड़कर चार गति में विडंबना करानेवाली घोर विषय रूपी मदिरा का पान करते हैं ।

विवेचन : दूध को छोड़कर जो मूत्र-पान करता हो ।

अमृत को छोड़कर जो विषपान करता हो, उसे हम क्या कहेंगे ? उसे मूर्ख ही तो कहेंगे न !

बस, उन पुरुषों को धिक्कार हो जो आत्मा को अमरता प्रदान करनेवाले जिनवचन की उपेक्षा करते हों और चार गति में आत्मा की विडंबना करानेवाली विषय रूपी मदिरा का पान करते हों ।

जिस व्यक्ति ने जिनेश्वर भगवंत के वचन रूपी अमृत का पान किया हो, उसे मौत का भी भय नहीं होता है । वे आत्माएँ कुछ भी अकार्य करने के लिए तैयार नहीं होती हैं ।

पुत्र द्वारा मौत की धमकी देने पर भी सिंह राजा घबराए नहीं ।

उन्होंने कहा, ``मैंने जिनवचन रूपी अमृत का पान किया हैं, अतः मुझे मौत से भी भय नहीं है ।''

जिनवचन का पान करनेवाली आत्मा को कर्तव्य-अकर्तव्य, भक्ष्य-अभक्ष्य, पेय-अपेय, देह-आत्मा आदि का भेदज्ञान अर्थात् विवेक होता है ।

इस विवेक के कारण वह अकर्तव्य से दूर ही भागता है और कर्तव्य पालन में सदैव तत्पर रहता है ।

इस संसार में जिनवचन की प्राप्ति होना अत्यंत ही दुर्लभ है । महान् पुण्योदय के बिना जिनवचन की प्राप्ति नहीं होती है, परंतु दुर्लभ बोधि आत्मा को जिनवचन की कोई कीमत नहीं होती है । जिनवचन की कीमत नहीं होने के कारण ही वह जिनवचन को छोड़कर भी मिथ्या शास्त्रों में ही आकर्षित होता है ।

इह लोक के भौतिक सुख उसे ज्यादा पसंद पड़ते हैं, इसी कारण वह उन सुखों को पाने के लिए ही रात-दिन प्रयत्न करता रहता है । उसे जिनवचन की कोई कीमत नहीं होती है । जिन वचन में उसे श्रद्धा, आस्था या विश्वास भी नहीं होता है ।

जिनवचन को छोड़ भौतिकवाद को प्रोत्साहन करनेवाला साहित्य आत्मा को चार गति में भटकानेवाला ही है ।

संतान के कर्त्तव्य

पेट में पाँच बेटे जिसे भारी नहीं लगे वह माँ पांच बेटों के पाँच फ्लेटों में भी भारी लग रही है । कलियुग की बलिहारी !

माता-पिता के प्रत्यक्ष उपकार को नहीं माननेवाला परमात्मा के उपकार को कैसे मान सकता है ?

मरणे वि दीणवयणं, माणधरा जे नरा न जंपंति ।
ते वि हु कुणंति लल्लि, बालाणं नेहगहगहिला ।।67।।

शब्दार्थ :

मरणे-**मृत्यु में**	वि हु-**भी**
वि-**भी**	कुणंति-**करते हैं**
दीणवयणं-**दीनवचन**	लल्लि-**रंक**
माणधरा-**मान धारण करनेवाले**	बालाणं-**स्त्री को**
जे नरा-**वे मनुष्य**	नेहगह-**स्नेहगत**
न जंपंति-**नहीं बोलते हैं**	गहिला-**पागल बने**
ते-**वे**	

भावार्थः- अभिमान को धारण करनेवाले कई लोग मौत आने पर भी दीन वचन नहीं बोलते हैं, परंतु वे भी स्नेह रूपी ग्रह से पागल बने हुए स्त्रियों से रंक की तरह प्रार्थना करते हैं ।

विवेचन : दुनिया में कई पुरुष खूब अभिमानी होते हैं । कैसे भी संयोगों में वे लेश भी दीनता नहीं करते हैं । भयंकर कष्टों को भी वे हँसते मुँह सहन कर लेते हैं । गर्व के कारण युद्ध भूमि में कभी भी पीछे हटने का नाम नहीं लेते हैं । इतने शूरवीर, बलवान और अभिमानी पुरुष भी कामभोगों में आसक्त बनकर स्त्री के आगे दीनता करते हुए दिखाई देते हैं ।

रावण तीन खंड का अधिपति था । अनेक बलवान राजाओं को उसने परास्त कर दिया था । परंतु सीता के रूप में मुग्ध होने के कारण वह सीता के पास आजीजी करता था-उसके चरणों में आलोटता था । वह उसके आगे दीनता भरे वचन बोलता था।

ठीक ही कहा है–

जलती आग बुझा न पाए, वह नीर ही क्या ?
अपने लक्ष्य को भेद न पाए, वह तीर ही क्या ?
संग्राम में लाखों पर भी विजय पानेवाला अगर,
अपने आप पर विजय न पाए तो वह वीर ही क्या ?

युद्ध भूमि में दुश्मनों को जीतना आसान है, मगर अपने आप पर विजय प्राप्त करना, बहुत ही मुश्किल है । आत्मा के छह अंतरंग शत्रुओं में सबसे प्रबल शत्रु काम ही है । अच्छे-अच्छे त्यागी, तपस्वी और संयमी आत्माओं का भी `काम' ने पतन करा दिया है ।

काम की इस भयंकरता को जानकर उससे बचने के लिए सतत उद्यमशील रहना चाहिए ।

सक्को वि नेव खंडइ, माहप्पमदुप्फुरं जए जेसिं ।
ते वि नरा नारीहिं, करावया नियय दासत्तं ।।68।।

शब्दार्थ :

सक्को वि-**इंद्र भी**	जेसिं-**जिनका**
नेव-**नहीं**	वि-**भी**
खंडइ-**खंडित करता है**	नरा-**मनुष्य**
माहप्प-**माहात्म्य**	नारीहिं-**स्त्रियों के द्वारा**
दुप्पूरं-**दुष्पूर**	कारावया-**कराया गया**
जए-**जगत में**	नियदासत्तं-**अपना दासपना**

भावार्थ:- इस दुनिया में जिन पुरुषों के माहात्म्य के गर्व को इन्द्र भी खंडित नहीं कर सकता, ऐसे पुरुष भी नारी द्वारा दास बनाए जाते हैं ।

विवेचन : दुनिया में कुछ पुरुष ऐसे होते हैं-जिनके अभिमान को इन्द्र भी नहीं तोड़ पाता है । परंतु ऐसे व्यक्ति भी नारी के चरणों में आलोटते हुए देखे जाते हैं ।

शास्त्र में रिपुमर्दन राजा और भुवनानंदा रानी का दृष्टांत प्रसिद्ध है, जिसमें भुवनानंदा का आसक्त बना राजा अपनी रानी के जूते भी सिर पर उठाने के लिए तैयार हो जाता है और अपनी पत्नी के पाँवों की मालिश भी करता है ।

पुरुष तभी तक बलवान है, जब तक वह स्वस्त्री में आसक्त नहीं होता है । स्व स्त्री में भी आसक्त बना पुरुष कमजोर हो जाता है ।

पुरुष का पुरुषत्व स्त्री के आगे समाप्त हो जाता है ।

संतान के कर्त्तव्य

जो अपने उपकारी माता-पिता को असमाधि देता हो,
उसे समाधि की प्राप्ति कैसे हो सकेगी ?

जउनंदणो महप्पा, जिणभाया वयधरो चरमदेहो ।
रहनेमि राइमई-रायमई कासि ही विसया ।।69।।

शब्दार्थ :

जउनंदणो-**यदुनंदन**	राइमई-**राजीमती**
महप्पा-**महान् आत्मा**	रायमई-**राग बुद्धि**
जिणभाया-**जिनेश्वर का भाई**	कासि-**किया**
वयधरो-**व्रतधारक**	ही-**खेद है**
चरमदेहो-**चरमशरीरी**	विसया-**विषय**
रहनेमि-**रथनेमि**	

भावार्थः- यदुनंदन, महात्मा, नेमिनाथ प्रभु के छोटे भाई, व्रतधारी चरमशरीरी ऐसे रथनेमि ने भी राजीमती के विषय में रागबुद्धि की । वास्तव में ये विषय दुर्लंघ्य हैं ।

विवेचन : विषयों की गति बड़ी विचित्र है । दीर्घ संसारी आत्माएँ तो विषयों में आसक्त होती ही हैं, क्योंकि इन्हीं विषयों के आधार पर ही संसारी आत्मा अपना भावी संसार खड़ा करती है ।

आत्मा के संसार-परिभ्रमण का मूल भी ये पाँच विषय ही हैं । विषयों को पाने के लिए, उन्हें पुष्ट करने के लिए ही आत्मा अपना प्रयत्न करती है । विषयों को पाने के लिए आत्मा कभी कषायों का भी सेवन करती है ।

आश्चर्य है कि चरम शरीरी आत्माएँ, जो उसी भव में मोक्ष में जानेवाली हैं, ऐसी भी आत्माएँ विषयों के जाल में फँस जाती हैं ।

समुद्रविजय राजा के पुत्र नेमिनाथ प्रभु के छोटे भाई रथनेमि चरम-शरीरी थे ।

राजीमती का त्यागकर नेमिकुमार ने दीक्षा अंगीकार कर ली थी ।

एक बार रथनेमि ने राजीमती से विवाह के लिए प्रार्थना की ।

उसी समय राजीमती ने मदनफल खाकर उल्टी की और बोली, ``तुम इसे खाओ !'' रथनेमि ने कहा, ``क्या मैं कुत्ता हूँ ? वमन को कौन खाएगा ?''

राजीमती ने कहा, ``अपने-भाई द्वारा त्यक्त की होने से वमन तुल्य मेरा भोग कैसे हो सकेगा !''

जन्मांतर में भी नेमिकुमार को छोड़ अन्य कोई मेरा पति न हो !''

नेमिनाथ प्रभु को केवलज्ञान होने के बाद राजीमती ने दीक्षा स्वीकार कर ली । प्रभु की देशना सुनकर रथनेमि ने भी दीक्षा ले ली ।

एक बार रथनेमि गिरनार पर्वत की किसी गुफा में कायोत्सर्ग ध्यान कर रहे थे । इधर राजीमती नेमिनाथ प्रभु को वंदन करने के लिए गिरनार पर्वत पर चढ़ रही थी ।

अचानक वर्षा हो जाने से राजीमती के वस्त्र गीले हो गए । वह उन्हें सुखाने के लिए पास ही की एक गुफा में गई । योगानुयोग उसी गुफा में रथनेमि कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े थे ।

राजीमती साध्वी ने वर्षा से गीले हुए वस्त्र जैसे ही अपने शरीर से दूर किये-उसी समय उसके अद्‌भुत रूप व लावण्य को देखकर रथनेमि पुनः कामातुर होकर राजीमती के पास भोगसुखों की प्रार्थना करने लगे ।

काम से विह्वल बने रथनेमि को प्रतिबोध करने के लिए राजीमती ने कहा, ``तुम यह क्या करने जा रहे हो ? जरा सोचो, अपनी प्रतिज्ञा को याद करो । साध्वी के शील भंग में बोधि का नाश रहा हुआ है । मैं भोजकुल में पैदा हुई हूँ और तुम अंधक कुल में पैदा हुए हो ! अपने कुल का तो विचार करो अगंधन कुल में पैदा हुए सर्प अग्नि में गिरकर मर जाएंगे परंतु अपने वमन किए विष का पुनः पान नहीं करेंगे ।

निष्कलंक प्राणी का जीवन सफल माना जाता है जबकि ब्रह्मचर्य का खंडन करने वाले का जीवन धिक्कार पात्र बनता है ।

``पहले गृहस्थ अवस्था में मैंने वाणी से भी तुम्हारी इच्छा नहीं की है तो अब व्रतधारिणी मैं तुम्हारी बात कैसे मान लूंगी । ``एक कौड़ी के लिए अमूल्य रत्न को खोनेवाला मूर्ख ही कहलाता है, उसी प्रकार मेरे देह के लिए निर्मल चारित्र को खोनेवाले तुम क्या कहलाओगे ?''

राजीमती के इन कठोर वचनों को सुनकर रथनेमि की सुषुप्त चेतना जागृत हो उठी । वे सोचने लगे, ``अहो ! स्त्री रूप में पैदा होने पर भी गुण

के निधान तुल्य इसको धन्य है । जबकि मैं पुरुष होकर भी कुकर्म के जाल में फँसा हुआ हूँ !''

``अहो ! गृहस्थ अवस्था में भी इसकी कितनी धीरता थी ! सचमुच, मूल्यवान रत्न को कौन जान सकता है ?

``मैंने पहले भी गलत आचरण किया और अब भी कर रहा हूँ । धिक्कार हो मुझे ! इस महासती ने तो मुझे नरक के कुए में से बाहर निकाला है ।''

इस प्रकार उत्तम भावनाओं से भावित बने हुए रथनेमि नेमिनाथ प्रभु के पास गए ! अपने पापों की आलोचना कर वे विशुद्ध बने । 401 वर्ष छद्मस्थावस्था में रहकर 500 वर्ष केवली पर्याय में रहे ।

901 वर्ष के अपने दीर्घ आयुष्य को पूर्णकर वे मोक्ष गए ।

अहो ! ये विषय कितने भयंकर हैं ! चरम शरीरी आत्माओं को भी विचलित कर देते हैं तो दूसरे जीवों की तो क्या बात करें !

संतान के कर्त्तव्य

ऐसा कोई भी गलत कार्य न करे, जिससे माता–पिता को ठपका सुनना पडे ।

उपकारी माता-पिता की `हाय' लेनेवाला जगत् में कभी सुखी नहीं हो सकता है ।

मयण पवणेण, जइ तारिसा वि सुरसेल निच्चला चलिआ ।
ता पक्क पत्त सत्ताण, इयर सत्ताण का वत्ता ? ।।70।।

शब्दार्थ :

मयण पवणेण-**मदन पवन से**	ता-**वे**
जइ-**यदि**	पक्कपत्त-**पके हुए पत्ते**
तारिसा-**वैसे**	सत्ताणं-**प्राणियों का**
वि-**भी**	इयर-**अन्य**
सुरसेल-**मेरुपर्वत**	सत्ताण-**प्राणियों**
निच्चला-**निश्चल**	का-**क्या**
चलिआ-**विचलित हुए**	वत्ता-**बात करें ।**

भावार्थ:- मेरु पर्वत के समान निश्चल मन वाले भी काम रूपी पवन से विचलित हो जाते हैं तो पके हुए पत्ते जैसे हीन सत्त्ववाले प्राणियों की क्या बात करें ?

विवेचन : वट वृक्ष के तीन भाग करें-स्कंध, डाली और पत्ते ।

थोड़ासा पवन आता है और तत्क्षण पत्ते हिलने लग जाते हैं ।

थोड़ा ज्यादा पवन आता है और वृक्ष की डालियाँ हिलने लग जाती है ।

आँधी और तूफान आता है और मूल से ही वृक्ष उखड़ जाता है ।

संसार में जीव तीन प्रकार के होते हैं- कुछ जीव छोटे से निमित्त को पाकर विचलित हो जाते हैं ।

कुछ जीव थोड़े बड़े निमित्त को पाकर विचलित हो जाते हैं ।

और कुछ जीव ऐसे दृढ़ मनोबली होते हैं, जो भयंकर से भयंकर निमित्त मिले तो भी वे लेश भी विचलित नहीं होते हैं ।

कुछ जीव पत्ते जैसे, कुछ जीव डाली जैसे और कुछ जीव स्कंध जैसे होते हैं ।

काम की भयंकरता का वर्णन करते हुए ग्रंथकार महर्षि कहते हैं कि जिस काम ने मेरु पर्वत जैसे दृढ़ सत्त्वशाली पुरुषों को भी विचलित कर दिया, उस काम के लिए अल्प सत्त्वशाली हमारे जैसे तो क्या चीज हैं ?

काम की इस भयंकरता को जानकर काम के निमित्तों से सदैव बचने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

जिप्पंति सुहेण चिय, हरि-करि-सप्पाइणो महाकूरो ।
इक्कुच्चि दुज्जेओ, कामो कय-सिवसुहविरामो ।।71।।

शब्दार्थ :

जिप्पंति-**जीते जाते हैं**	इक्कुच्चिय-**एक ही**
सुहेण-**सुख पूर्वक**	दुज्जेओ-**दुर्जेय**
चिय-	कामो-**काम**
हरि-**सिंह**	कय-**किया है**
करि-**हाथी**	सिवसुह-**मोक्षसुख**
सप्पाइणो-**सर्प आदि**	विरामो-**विराम**
महाकूरो-**महाक्रूर**	

भावार्थः- महाक्रूर ऐसे सिंह, हाथी, सर्प आदि को सुखपूर्वक जीता जा सकता है, परंतु मोक्ष-सुख में बाधाकारक काम ही दुर्जेय है ।

विवेचन : सिंह जंगल का राजा कहलाता है । खूब पराक्रमी और क्रूर होता है-महाकाय हाथी के गंड स्थल को भी अपने पंजों के प्रहार द्वारा फाड़ डालता है । परंतु ऐसे सिंह को भी प्रयत्न द्वारा वश में किया जा सकता है ।

सर्कसवाले सिंह को वश में कर पिंजरे में बंद कर देते हैं और उसके द्वारा हर तरह की प्रवृत्ति कराते हैं ।

हाथी महाकाय होता है । जंगली हाथी खूब बलवान होता है । अच्छे अच्छे बलवान प्राणी को भी वह अपने पैरों तले कुचल देता है । ऐसे महाकाय हाथी को भी मनुष्य अपने वश में कर लेता है । ऐसा महाकाय हाथी भी जिंदगी भर के लिए मानव का गुलाम बन जाता है ।

साँप बड़ा भयंकर होता है । जहरीला होता है । अपने तीक्ष्ण डंक द्वारा शत्रु को मौत के घाट उतार देता है । ऐसे साँप को भी मदारी अपने वश में कर लेता है ।

जंगल के इन क्रूर प्राणियों को प्रयत्न द्वारा वश में किया जा सकता है, परंतु काम को जीतना बहुत ही कठिन है ।

कहा भी है-

'कंदर्प-दर्पदलने विरलाः मनुष्याः ।'

काम और अभिमान को जीतनेवाले विरले ही होते हैं ।

विसमा विसय पिवासा, अणाइ भव भावणाइ जीवाणं ।
अइ दुज्जे याणि य इंदियाइं तह चंचलं चित्तं ।।72।।

शब्दार्थ :

विसमा-**विषम है**	अइ दुज्जेयाणि-**अति दुर्जेय**
विसय पिवासा-**विषय की प्यास**	य-**तथा**
अणाइ-**अनादि**	इंदियाइं-**इन्द्रियाँ**
भव भावणाइ-**भव भावना आदि**	तह-**तथा**
जीवाणं-**जीवों को**	चंचलं चित्तं-**चंचल चित्त**

भावार्थ:- अनादिकाल से अभ्यास होने के कारण जीवों की विषय-पिपासा बड़ी विचित्र है । ये इन्द्रियाँ अति दुर्जेय हैं और चित्त अत्यंत ही चंचल है ।

विवेचन : भोजन द्वारा पेट की भूख को दूर किया जा सकता है अथवा पानी द्वारा तीव्र प्यास को भी बुझाया जा सकता है ।

पानी या मिट्टी द्वारा किसी खड्डे को भरा जा सकता है-परंतु आश्चर्य है कि विषय की प्यास को कभी भी बुझाया नहीं जा सकता है ।

ज्यों-ज्यों मुँह में कवल लेते जाते हैं, त्यों-त्यों भूख शांत होती जाती है, जबकि आश्चर्य है कि ज्यों-ज्यों विषयों का भोग किया जाता है, त्यों-त्यों विषय की प्यास बढ़ती ही जाती है ।

भोजन करने से भस्मक के रोगी की भूख शांत नहीं हो पाती है । बहुत कुछ खा लेने पर भी वह दुबला ही रहता है क्योंकि उसका खाया हुआ भस्म हो जाता है ।

पाँच इन्द्रियों के विषयों की प्यास भस्मक के रोग की भांति है । ज्यों-ज्यों विषय-सेवन किया जाता है, त्यों-त्यों उसकी प्यास बढ़ती ही जाती है ।

समुद्र का खारा पानी पीने से कभी प्यास मिटती नहीं है । ज्यों ज्यों पानी पीते हैं, त्यों-त्यों प्यास बढ़ती ही जाती है ।

विषयों का भोग करते ही जाएँ-करते ही जाएँ तो भी तृप्ति का अनुभव नहीं होता है ।

जिस प्रकार पानी को कहीं भी ढोला जाय, वह निम्न भाग, ढालवाले भाग की ओर ही आगे बढता है । पानी को ऊपर चढ़ाना हो तो यंत्र की अपेक्षा

रहती है । बस, मन का भी यह विचित्र स्वभाव है, वह सहज ही निम्न गति की ओर आगे बढ़ता जाता है ।

ये इन्द्रियाँ और मन अत्यंत ही दुर्जेय हैं । इनको वश में करने के लिए ज्यों ज्यों प्रयत्न किया जाता है, त्यों-त्यों वे और अधिक उछलते हैं ।

पू. आनंदघनजी म. ने ठीक ही कहा-

'जिम जिम जतन करी ने राखुं,
तिम तिम अलगो भांजे ।'

ज्यों-ज्यों इस मन को वश में करने की कोशिश करता हूँ-त्यों-त्यों वह दूर ही दूर भागता जाता है ।

'मन साध्यु तेणे सघलु साध्युं,
एह वात नवि खोटी ।'

जिसने मन को वश में कर लिया, उसने सचमुच, सबको वश में कर लिया है ।

संतान के कर्त्तव्य

माता–पिता को कोई तप आदि हो तो उनके अनुकूल भोजन आदि का प्रबंध करें ।

अशक्त माता–पिता को मंदिर आदि ले जाने में आलास न करें ।

कलमल अरइ अभुक्खा, वाही-दाहाइ-विविह दुक्खाइं ।
मरणं पि हु विरहाइसु, संपज्जइ काम-तविआणं ।।73।।

शब्दार्थ :

कलमल-**कलमल**	दुक्खाइं-**दुःख**
अरइ-**अरति**	मरणं पि-**मृत्यु भी**
अभुक्खा-**भूख का अभाव**	विरहाइसु-**विरह आदि में**
वाही-**व्याधि**	संपज्जइ-**होता है**
दाहाइ-**दाह आदि**	काम तविआणं-**काम से तप्त को**
विविह-**विविध**	

भावार्थः- कलमल, अरति, भोजन की अरुचि, व्याधि तथा दाह आदि विविध दुःख ही नहीं, काम में आसक्त जीव का विरह आदि होने पर मरण भी हो जाता है ।

विवेचन : कामवासना में आसक्त बने जीव की कैसी दुर्दशा होती है, उसका स्पष्ट वर्णन इस गाथा में किया है ।

1. कलमूल : विषय में आसक्त व्यक्ति को अनुकूल विषय-सामग्री प्राप्त नहीं होने पर चित्त में क्षोभ होता है अर्थात् उसका चित्त आकुल-व्याकुल बन जाता है ।

2. अरइ : काम में आसक्त जीव को लंबे समय तक इच्छित वस्तु नहीं मिलने पर गाढ़ उद्वेग अरति भाव पैदा होता है ।

3. भोजन में अरुचि : पाँच इन्द्रियों के विषयों को पाने में ही मन लगा होने से काम में आसक्त व्यक्ति के भोजन की रुचि समाप्त हो जाती है अर्थात् उसे भोजन में आनंद नहीं आता है ।

4. व्याधि : भोजन अस्त-व्यस्त हो जाने से शरीर में ज्वर आदि रोग भी घर कर जाते है ।

5. दाह : काम की आसक्ति के कारण शरीर में दाह पैदा होता है ।

6. मृत्यु : कामसुख की अतिशय लालसा और अतिभोग के कारण मनुष्य की मृत्यु भी हो जाती है ।

अन्यत्र भी काम की 10 दशाओं का वर्णन करते हुए लिखा है—

1. पहले-प्रारंभ में विषयसुख पाने की **अभिलाषा** पैदा होती है ।
2. उसके बाद उसी **विषय का चिंतन** प्रारंभ होता है ।
3. बार-बार उस विषय की **स्मृति** रहती है ।
4. उस **विषयसुख** का **गुणकीर्तन**-प्रशंसा करता है ।
5. अनुकूल विषय नहीं मिलने पर चित्त में **उद्वेग** पैदा होता है ।
6. मानसिक संताप के कारण व्यक्ति **विलाप** करता है ।
7. फिर चित्त में **उन्माद** पैदा होता है ।
8. शरीर **व्याधि**ग्रस्त बनता है ।
9. जीवन में **जड़ता** आती है ।
10. अंत में **मरण** भी हो जाता है ।

संतान के कर्त्तव्य

माता–पिता बीमार हो, तब अन्य सब काम गौण कर उनकी सेवा करे ।

माता–पिता हताश या निराश हो, ऐसा कोई व्यवहार न करे ।

पंचिदिय विसय पसंगरेसि, मण वयण काय नवि संवरेसि ।
तं वाहिसि कत्तिय गल पएसि जं अट्ठ कम्म नवि निज्जरेसि ।।74।।

शब्दार्थ :

पंचिंदिय-**पाँच इन्द्रियाँ**	तं-**उसे**
विसय-**विषय**	वाहिसि-**रखते हो**
पसंगरेसि-**करते हो**	कत्तिय-**तलवार**
मण-**मन**	गलपएसि-**गले में**
वयण-**वचन**	जं-**जो**
काय-**काया**	अट्ठकम्म-**आठ कर्म**
नवि-**नहीं**	नवि-**नहीं**
संवरेसि-**संवर करते हो**	निज्जरेसि-**निर्जरा करते हो**

भावार्थः- हे जीव ! तू मन, वचन और काया का संवर नहीं करता है और पाँच इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति करता है । आठ प्रकार के कर्मों की निर्जरा भी नहीं करता है ।

विवेचन : देवों को भी दुर्लभ ऐसा यह मानव जीवन आत्म-कल्याण के लिए प्राप्त हुआ है । परंतु अज्ञानी जीव पाँच इन्द्रियों की आसक्ति में अपना अमूल्य जीवन बर्बाद कर देता है । मानव जीवन का प्रत्येक क्षण कीमती है । अन्य खोई हुई वस्तु प्रयत्न द्वारा या पैसों के बल से पुनः प्राप्त कर सकते हैं, परंतु खोया हुआ समय किसी भी हालत में प्राप्त नहीं होता है । अतः मानव जीवन का हर क्षण मूल्यवान Valuable है । ग्रंथकार महर्षि अपनी ही आत्मा को प्रेरणा देते हुए कहते हैं-

हे जीव ! तू जो काम करने योग्य है, वह नहीं कर रहा है और जो काम नहीं करने का है, वह कर रहा है । इस जीवन में मन, वचन और काया पर संवर करने का है ! क्योंकि इस जगत् में सर्वाधिक पाप मनुष्य ही करता है । 7 वीं नरक के योग्य भयंकर पाप कर्मों का उपार्जन मनुष्य (एवं तंदुल मत्स्य) ही करता है ।

मनुष्य जीवन में प्रमाद किया तो भयंकर दुर्गति है और इस जीवन के प्रत्येक पल का सदुपयोग किया तो लाभ का कोई पार नहीं है । कर्म के आस्रव के मुख्य पाँच द्वार हैं मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग !

देवता और नरक के जीव सिर्फ मिथ्यात्व के आस्त्रव द्वार को बंद कर सकते हैं, अन्य द्वार तो उनके लिए खुले ही होते हैं ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच आंशिक अविरति का त्याग कर सकते हैं । परंतु आस्त्रव के पाँचों द्वारों को बंद करने की ताकत एक मात्र मनुष्य में ही है ।

मनुष्य ही संपूर्ण संवर की साधना कर सकता है ।

हे आत्मन् ! यह जीवन तुझे संवर और निर्जरा की साधना के लिए मिला है ।

संपूर्ण कर्मों की निर्जरा जिस भव में संभव है, उसी भव में यह मनुष्य विषयों में आसक्त होकर नए-नए कर्म बाँध रहा है ।

सचमुच, तू अपने ही गले पर छुरी चला रहा है ।

देव आदि अन्य भवों में पापों की आंशिक निर्जरा ही हो सकती है, परंतु पुण्य-पाप आदि सभी कर्मों की संपूर्ण निर्जरा करने की ताकत एक मात्र मनुष्य भव में ही रही हुई है ।

हे जीव ! कर्मों को खपाने के लिए तुझे बहुत ही सुंदर अवसर मिला है, इस अवसर को तू व्यर्थ मत जाने दे ।

संतान के कर्त्तव्य

बचपन में गोद देने वाली माँ को बुढ़ापे में दगा देने वाला मत बनना ।

माँ और क्षमा दोनों एक हैं, क्योंकि माफ करने में दोनों नेक हैं ।

किं तुमंधोसि किं वासि धत्तूरिओ,
अहव किं संनिवाएण आउरिओ ।
अमय सम धम्म जं विसं व अवमन्नसे,
विसयविस विसम अमयं व बहुमन्नसे ।।75।।

शब्दार्थ :

किं-**क्या,** तुमं-**तुम**	अमयसम-**अमृत समान**
अंधोसि-**अंधे हो**	धम्मु-**धर्म,** जं-**जो**
किं-**क्या**	विसं-**विष,** व-**तरह**
वासि-**अथवा हो**	अवमन्नसे-**अवगणना करते हो**
धत्तूरिओ-**धतूरा खाये हुए**	विसयविस-**विषय विष**
अहव-**अथवा**	विसम-**विषम**
किं संनिवाएण-**क्या संनिपात से**	अमयं व-**अमृत की तरह**
आउरिओ-**पीड़ित हो**	बहुमन्नसे-**बहुमान करते हो**

भावार्थः- **हे आत्मा ! क्या तुम अंधे हो अथवा तुमने धतूरे का भक्षण किया है ? अथवा संनिपात से ग्रस्त हो ! जिस कारण अमृत जैसे धर्म की अवगणना करते हो और विषय रूपी विष का अमृत की तरह बहुमान करते हो ?**

विवेचन : अंधे व्यक्ति को मार्ग का बोध नहीं होता है, अतः उसकी गति बराबर नहीं होती है ।

हे आत्मन् ! तुम मोक्षमार्ग में बराबर नहीं चल रहे हो तो क्या तुम अंधे हो ? मार्ग दिखाई नहीं दे रहा है ?

धतूरे का पान करनेवाले व्यक्ति को नशा चढ़ जाता है, अतः वह सोच-समझकर विवेकपूर्वक कुछ भी प्रवृत्ति नहीं करता है ।

हे आत्मन् ! क्या तुमने धतूरे का पान किया है ? जिस कारण तुम मोक्षमार्ग की आराधना-साधना में बिल्कुल जागृत नहीं हो ।

सन्निपात के रोग से व्यक्ति को कुछ भी भान नहीं होता है, वह कुछ भी बकवास करता रहता है ।

हे आत्मन् ! क्या तुझे संनिपात हो गया है ? क्योंकि तुम अमृत तुल्य धर्म को छोड़कर विष तुल्य विषय-वासना में मुग्ध बने हो ।

पाँच इन्द्रियों के ये विषय तो विष तुल्य हैं, जो आत्मा को इस संसार में अनेक भवों तक भटकानेवाले हैं । इन विष तुल्य विषयों में आसक्त बनकर अपने जीवन को व्यर्थ ही क्यों गंवा रहे हो ?

तुज्झ तह नाण-विन्नाण-गुणडम्बरो,
जलण जालासु निवडंतु जिअ निब्भरो ।
पयइ वामेसु कामेसु जं रज्जसे,
जेहि पुण पुण वि नरयानले पच्चसे ।।76।।

शब्दार्थ :

तुज्झ-**तुम्हारा**
तह-**तप**
नाण-**ज्ञान**
विन्नाण-**विज्ञान**
गुणडम्बरो-**गुणों का आडंबर**
जलण जालासु-**आग की ज्वालाओं में**
निवडंतु-**गिरे**
जिअ-**जो**
निब्भरो-**अतिशय**
पयइ-**प्रकृति से**
वामेसु-**प्रतिकूल**
कामेसु-**काम में**
जं-**जो**
रज्जसे-**राग करते हो**
जेहि-**जिनके द्वारा**
पुण पुण वि-**पुनः पुनः**
नरयानले-**नरक अग्नि में**
पच्चसे-**पकाए जाते हो**

भावार्थः- हे जीव ! तुम्हारा तप, ज्ञान, विज्ञान और गुणों का समूह आग की ज्वाला में गिरे, क्योंकि मोक्षमार्ग के प्रतिकूल ऐसे काम में तुम खुश होते हो, जिसके फलस्वरूप तुम नरक रूप अग्नि में पकाए जाओगे ।

विवेचन : मोक्षमार्ग से ठीक विपरीत संसारमार्ग को पुष्ट करनेवाले काम-भोगों का जो आसक्ति पूर्वक सेवन करता है, उन्हीं कामभोगों को पाने के लिए प्रयत्नशील बनता है, ऐसे व्यक्ति के छट्ठ, अट्ठम आदि तप, शास्त्रों के अभ्यास और उदारता आदि गुणों को भी धिक्कार हो !

तप-त्याग-ज्ञान आदि गुण मोक्ष की साधना के लिए हैं, मोक्ष-मार्ग में आगे बढ़ने के लिए हैं । यदि उन गुणों के साथ-साथ पाँच इन्द्रियों की आसक्ति कम न हो तो वे गुण भी आत्मा के लिए लाभकारी कैसे बन पाएंगे ?

अच्छी भी दवाई यदि अपथ्य भोजन के साथ ली जाय तो रोग नाश के बजाय रोग में ही अभिवृद्धि होती है, उसी प्रकार ज्ञानादि गुणों की आराधना-साधना भी विषयों की आसक्ति दूर करने के लिए ही है । यदि उन गुणों की साधना

के बाद भी विषयों की आसक्ति घटती नहीं हो, या विषयों का रस मंद नहीं होता हो तो वे गुण भी वास्तव में गुण नहीं कहलाते हैं, वे गुणाभास ही कहलाते हैं ।

कामभोगों के आसेवन के पाप के फलस्वरूप आत्मा को दीर्घ काल तक नरक की भयंकर आग की पीड़ा को सहन करना पड़ता है ।

नरक की प्रत्येक पीड़ा अत्यंत ही भयंकर है । मनुष्य लोक में जो शीतवेदना या उष्ण वेदना है, उससे अनंत गुणी वेदना नरक में रही हुई है ।

अब यदि उस वेदना को सहन नहीं करना हो तो विषयों की आसक्ति को तुम छोड़ दो ।

संतान के कर्त्तव्य

'माता–पिता' का अपमान हो, ऐसा व्यवहार न करे ।

माता–पिता के दोष न देखे, उनकी कभी निंदा न करे ।

माता–पिता से ऊंचे आसन पर कभी न बैठे ।

दहइ गोसीस सिक्खंड-छार-
क्कए छगल-गहणट्ठमेरावणं ।
विक्कए कप्पतरु तोरि एरण्ड सो वावए,
जुज्जि विसएहि मणुअत्तणं हारए ! ।।77।।

शब्दार्थ :

दहइ-**जलाता है**	तोरि-**उखेड़कर**
गोसीस-**गोशीर्ष**	एरण्ड-**एरंड**
सिक्खंड-**चंदन**	सो-**वह**
छारक्कए-**भस्म के लिए**	वावए-**बोता है**
छगल-**बकरा**	जुज्जि-**जो जो**
गहणट्ठं-**ग्रहण करने के लिए**	विसएहि-**विषयों से**
ऐरावणं-**ऐरावण हाथी को**	मणुअत्तणं-**मनुष्यपने को**
विक्कए-**बेचता है**	हारए-**हार जाता है**
कप्पतरु-**कल्पवृक्ष**	

भावार्थ:- विषयों में आसक्त होकर जो मनुष्यपने को हारता है, वह गोशीर्ष चंदन और श्रीखंड को जलाने का काम करता है, ऐरावण हाथी को बेचकर बकरा खरीद रहा है और कल्पवृक्ष को उखाड़कर एरंड को बो रहा है ।

विवेचन : मनुष्य को राख चाहिए तो वह ऐसे ही मुफ्त में मिल सकती है अथवा गोबर के कंडे जलाकर भी राख प्राप्त की जा सकती है परंतु यदि कोई व्यक्ति गोशीर्ष हरिचंदन या श्रीखंड अर्थात् मलयाचल पर पैदा होनेवाले चंदन को जलाकर राख प्राप्त करे तो उसे हम मूर्ख ही कहेंगे ।

इन्द्र के हाथी को ऐरावण हाथी कहते हैं । उसके अनेक सूंडें होती हैं और वह बहुत ही मूल्यवान होता है । यदि कोई ऐरावण हाथी को बेचकर उसके बदले में अल्प मूल्यवाले बकरे को खरीदे तो उसे हम मूर्ख ही कहेंगे ।

इसी प्रकार अपने घर के आंगण में पैदा हुए कल्पवृक्ष को उखाड़कर जो एरंड के वृक्ष को बोता हो तो उसे मूर्ख-शिरोमणि ही कहा जाएगा । बस, इसी प्रकार जो मनुष्य इस मानव भव में वैषयिक सुखों के पीछे अपने मानव जीवन के अमूल्य क्षणों को खो रहा है, वह महामूर्खता ही कर रहा है ।

मानव-जीवन चंदन वृक्ष, ऐरावण हाथी और कल्पवृक्ष तुल्य है, जबकि ये वैषयिक सुख तो राख, बकरे और एरंडवृक्ष के समान है ।

आत्मिक सुखों की उपेक्षाकर जो वैषयिक सुखों के पीछे दौड़ता है सचमुच, यह उसका पागलपन ही है ।

हे जीव ! ऐसा पागलपन तुझे नहीं करना चाहिए । आज तक वही पागलपन कर मनुष्य-जीवन के अमूल्य क्षणों को व्यर्थ में खोया ही है ।

माता-पिता के कर्त्तव्य

संतान को जन्म तो पशु भी देते हैं, परंतु सच्चे माता पिता वे हैं जो अपनी संतानों को संस्कारों का दान करते हैं ।

गर्भवती स्त्री यदि महापुरुषों के चरित्र पढ़ती हो, योग और अध्यात्म के ग्रंथ पढ़ती हो, जिनवाणी का श्रवण, सद्गुरु को वंदन, प्रभु की अष्ट प्रकारी पूजा, नमस्कार महामंत्र का जाप, गुरु को सुपात्रदान और साधर्मिक की भक्ति करती हो तो उसके इन आचारों से गर्भस्थ शिशु भी अवश्य प्रभावित होता है, संस्कारी बनता है ।

नवजात शिशु के कानों में सर्वप्रथम, नवकार महामंत्र सुनाना चाहिए ।

अधुवं जीविअं नच्चा, सिद्धिमग्गं विआणिआ ।
विणिअट्टिज्ज भोगेसु आउं परिमियमप्पणो ।।78।।

शब्दार्थ :

अधुवं-**नाशवंत**	विणिअट्टिज्ज-**रुके**
जीविअं-**जीवन को**	भोगेसु-**भोगों में**
नच्चा-**जानकर**	आउं-**आयुष्य**
सिद्धिमग्गं-**मोक्षमार्ग**	परिमियं-**परिमित**
विआणिआ-**जानकर**	अप्पणो-**स्वयं का**

भावार्थः- हे जीव ! जीवन को क्षणिक जानकर, मुक्तिमार्ग को समझकर और अपने परिमित आयुष्य को जानकर भोगों से विराम ले !

विवेचन : हे आत्मन् ! इस संसार में सब कुछ नाशवंत अर्थात् क्षणभंगुर है । यह जीवन भी अधुव अर्थात् अशाश्वत है ।

हारिल वाचक ने भी कहा है-

`राज्य, ऐश्वर्य, धन, सुवर्ण, सारभूत पदार्थ, परिजन, राजा की कृपा, देव का विपुल सुख, रूप, आरोग्य तथा वर्तमान जीवन भी क्षणभंगुर है । जो यह लोक सुख को करता है, वह लोक भी चपल है ।'

संसार के सभी पदार्थों की क्षणभंगुरता को जानकर तुम भोग सुखों से विराम लो ।

मोक्ष ही आत्मा के लिए शाश्वत स्थान है । संसार में किसी भी भव में, चाहे वह मनुष्य का भव हो या देव का भव हो, आत्मा लंबे समय तक नहीं रह सकती है, जबकि मोक्ष में आत्मा को सदाकाल रहने का है ।

वर्तमान जीवन का जो आयुष्य है-वह बहुत ही थोड़ा है । पानी में पैदा हुए परपोटे की तरह यह जीवन कब समाप्त हो जाएगा, कुछ भी कह नहीं सकते हैं । अतः ऐसे क्षणिक जीवन में मोक्ष-मार्ग की आराधना में प्रमाद किस बात का ?

सिवमग्ग संठिआण वि, जह दुज्जेआ जियाण पुण विसया ।
तह अन्नं किं पि जए, दुज्जेअं नत्थि सयले वि ।।79।।

शब्दार्थ :

सिवमग्ग-**मोक्षमार्ग**	तह-**तथा**
संठिआण-**रहे हुए**	अन्नं-**अन्य**
वि-**भी**	किंपि-**कुछ भी**
जह-**जिस प्रकार**	जए-**जगत् में**
दुज्जेआ-**दुर्जेय**	दुज्जेअं-**दुर्जेय**
जियाण-**जीवों को**	नत्थि-**नहीं है**
पुण-**भी**	सयले-**सकल**
विसया-**विषय**	वि-**भी**

भावार्थ:- मोक्षमार्ग में अच्छी तरह से रहे हुए जीवों के लिए भी ये विषय दुर्जेय हैं, इस कारण इस संसार में सबसे अधिक दुर्जेय दूसरा कोई नहीं है ।

विवेचन : युद्धभूमि में शस्त्रों के बल से दुश्मनों को जीता जा सकता है, परंतु अपनी ही इन्द्रियों को जीतना बहुत ही कठिन है ।

मोक्षमार्ग की आराधना-साधना के लिए इन्द्रियों की भी अपेक्षा रहती है । ये इन्द्रियाँ यदि साधक के वश में हैं तो आत्मा मोक्षमार्ग में तीव्र गति से प्रयाण कर सकती है और यदि व्यक्ति इन्हीं इन्द्रियों का गुलाम है तो वह निरंतर पतन के ही गर्त में डूबता जाता है ।

इस संसार में अन्य सभी को जीत लेना आसान है, परंतु इन इन्द्रियों को जीतना बहुत ही कठिन है ।

इन्द्रियों को जीतने की संपूर्ण साधना एक मात्र मानव भव में ही शक्य है, अतः इस जीवन को प्राप्त कर उसी को जीतने के लिए प्रबल पुरुषार्थ करना चाहिए ।

सविडंकुब्भडरूवा दिट्ठा मोहेइ जा मणं इत्थी ।
आयहियं चिंतंता, दूरयरेणं परिहरंति ।।80।।

शब्दार्थ :

सविडंक-**विटंक सहित**	इत्थी-**स्त्री**
उब्भडरूवा-**उद्भट रूप**	आयहियं-**आत्महित को**
दिट्ठा-**देखे गए**	चिंतंता-**सोचते हुए**
मोहेइ-**मोहित होते हैं**	दूरयरेणं-**दूर से ही**
जा-**यदि**	परिहरंति-**त्याग करते हैं**
मणं-**मन**	

भावार्थः- उद्धत और अतिशय रूपवाली स्त्री नजर समक्ष आकर जब तक मन को मोहित न कर ले. तब तक आत्महित के इच्छुक उसका दूर से ही त्याग करते हैं ।

विवेचन : पवन से बढ़ी हुई आग एक ही जीवन को समाप्त करती है अर्थात् आग में झुलस कर जल जाने पर व्यक्ति का एक ही जीवन समाप्त होता है ।

मदोन्मत्त बना हुआ हाथी मनुष्य को अपने पाँवों तले कुचल देता है तो एक ही जीवन समाप्त होता है ।

कुपित हुआ साँप यदि डसे तो व्यक्ति को एक ही बार मरना पडता हैं, परंतु स्त्री के कामभोग में आसक्त बना मनुष्य तो इसलोक परलोक संबंधी ज्ञान, शील, विनय, वैभव, औदार्य आदि सभी को समाप्त कर देता है ।

समझदार प्राणी वही कहलाता है जो आत्महित का विचार करते हुए स्त्री का दूर से ही त्याग करता है अर्थात् स्त्री के संपर्क से दूर रहनेवाला ही आत्महित कर सकता है ।

सच्चं सुअं पि सीलं, विन्नाणं तह तवं पि वेरुग्गं ।
वच्चइ खणेण सव्वं, विसयवसेणं जइणं वि ।।81।।

शब्दार्थ :

सच्चं-**सत्य**	पि-**भी**
सुअं-**श्रुत**	वेरुग्गं-**वैराग्य**
पि-**भी**	वच्चइ-**चला जाता है**
सीलं-**शील**	खणेण-**क्षण से**
विन्नाणं-**विज्ञान**	सव्वं-**समस्त**
तह-**तथा**	विसयवसेणं-**विषय के वश से**
तवं-**तप**	जईणं वि-**साधु को भी**

भावार्थ:- विषयों के वश होने से साधु के भी सत्य, श्रुत, शील, विज्ञान और वैराग्य क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं ।

विवेचन : सत्य अर्थात् यथार्थ वचन ! श्रुत अर्थात् आगम शास्त्र, शील अर्थात् 18000 भेदवाला ब्रह्मचर्य.

विज्ञान अर्थात् क्रियाकुशलता अथवा विशिष्ट ज्ञान । तप अर्थात् उपवास, छट्ठ अट्ठम आदि तथा वैराग्य अर्थात् संसार के भौतिक सुखों से विरक्ति ।

मोक्षमार्ग की आराधना-साधना के लिए इन सब गुणों की आराधना साधना खूब जरूरी है ।

परंतु ये सभी गुण आत्मा में तभी तक जीवंत रहते हैं, जब तक आत्मा पाँच-इन्द्रियों के विषयों के अधीन नहीं बनती है ।

जो व्यक्ति इन्द्रियों के विषयों के अधीन बनता है, उसकी ज्ञानादि संपत्ति क्षणभर में ही नष्ट हो जाती है ।

तात्पर्य यह है कि जो विषयों के अधीन है, उसके ज्ञान, तप आदि की कोई कीमत नहीं है ।

रे जीव ! स मइकप्पिय निमेस सुहलालसो कहं मूढ ।
सासय सुहमसमतमं हारसि ससिसोयरं च जसं ।।82।।

शब्दार्थ :

रे जीव !-**हे जीव**	सासय-**शाश्वत**
स-**वह**	सुहं-**सुख को**
मइकप्पिय-**मतिकल्पित**	असमतमं-**अतुल्य**
निमेस-**निमेष**	हारसि-**हार जाते हो**
सुहलालसो-**सुख में लालच**	ससिसोयरं-**चंद्र के समान**
कहं-**कैसे**	च-**और**
मूढ-**मूढ़**	जसं-**यश को**

भावार्थ:- हे जीव ! बुद्धि से कल्पित और निमेष (आँख की पलक) मात्र रहनेवाले विषयसुख में आसक्त होकर अनुपम और शाश्वत मोक्षसुख को और चंद्र समान उज्ज्वल यश को क्यों हार जाता है ?

विवेचन : आँख की पलकें खुलती हैं और बंद होती हैं, उसे निमेष कहते हैं । विषय-भोग से जो आनंद आता है, वह निमेष की तरह है अर्थात् क्षण भर के लिए आनंद देनेवाला है ।

ज्ञानियों की दृष्टि में विषयों में वास्तविक सुख नहीं है, परंतु अपनी मति-कल्पना से जीवात्मा को उसमें सुख दिखाई देता है । ऐसे विषय-सुख में लुब्ध होकर जीवात्मा शाश्वत सुख को हार जाता है ।

एक म्यान में दो तलवारें नहीं रहती हैं अथवा एक गुफा में दो केसरी सिंह नहीं रहते हैं, उसी प्रकार एक ही मन में राम और काम दोनों का वास नहीं हो सकता है । जहाँ राम (प्रभु) का वास होगा, वहाँ काम का वास नहीं होगा और जहाँ काम का वास होगा, वहाँ राम का वास नहीं होगा ।

मन-मंदिर में प्रभु की प्रतिष्ठा करनी हो तो वहाँ से काम-वासना को दूर करना ही होगा ।

ज्ञान-ध्यान और तप साधना द्वारा जिस मोक्ष को हथेली पर ला दिया जाता है, वही मोक्ष, विषयों की आसक्ति के कारण कोसों दूर हो जाता है ।

संभूति मुनि महातपस्वी थे, मोक्ष उनकी हथेली पर था, परंतु सनतकुमार के स्त्रीरत्न की केशलता के स्पर्श के साथ ही उनकी सारी विचारधारा बदल गई ।

विषयसुख पाने में लुब्ध बने उन मुनि को स्त्रीरत्न की प्राप्ति में सुख दिखाई देने लगा, इसके लिए वे अपनी संयम साधना को भी बेचने के लिए तैयार हो गए ।

संभूति मुनि ने चक्रवर्ती बनने का नियाणा कर लिया । संयम साधना के फलस्वरूप वे चक्रवर्ती बने, परंतु विषयों की लोलुपता के कारण वे मरकर 7वीं नरक में चले गए ।

सिंदूरप्रकर में ठीक ही कहा है-

`काम में आसक्त व्यक्ति ने जगत् में अपनी अपकीर्ति का पटह बजाया है । अपने कुल की इज्जत पर कालिमा पोत ली है । उसने चारित्र को जलांजलि अर्थात् तिलांजलि दे दी है, उसने गुणों के बाग में आग लगा दी है । उसने सभी आपत्तियों को आमंत्रण दिया है और मोक्षमार्ग के द्वार को बंद कर दिया है ।'

माता-पिता के कर्त्तव्य

पाँच वर्ष तक बालक को खूब प्रेम और वात्सल्य देना चाहिए, उसके बाद दस वर्ष तक उसको संस्कारित करने के लिए थोड़ा कठोर बनना चाहिए अर्थात् ताड़न और तर्जना भी करनी चाहिए । सोलह वर्ष के बाद मित्रवत् आचरण होना चाहिए ।

बालक के पेट में कोई अभक्ष्य वस्तु चली न जाय, इसका ख्याल माता-पिता को अवश्य रखना चाहिए ।

पज्जलिओ विसयग्गी, चरित्तसारं डहिज्ज कसिणं पि ।
सम्मत्तं पिअ विराहि, अणंत संसारिअं कुज्जा ।।83।।

शब्दार्थ :

पज्जलिओ-**प्रज्वलित**	सम्मत्तं-**सम्यक्त्व को**
विसयग्गी-**विषय रूपी आग**	पिअ-**भी**
चरित्तसारं-**चारित्र के सार को**	विराहि-**विराधना करते हो**
डहिज्ज-**जलाती है**	अणंतसंसारिअं-**अनंत-संसारी**
कसिणं पि-**संपूर्ण भी**	कुज्जा-**करते हो**

भावार्थः- प्रज्वलित हुई विषय रूपी अग्नि समस्त चारित्र के सार को भी जलाकर भस्मीभूत कर देती है । अरे ! सम्यक्त्व की भी विराधना कराकर आत्मा को अनंत संसारी बना देती है ।

विवेचन : लाखों क्विंटल लकडियों का ढेर हो, परंतु आग की चिनगारी उस ढेर को थोड़ी ही देर में भस्मीभूत कर देती है ।

बस, इसी प्रकार वर्षों तक पवित्र चारित्र और महाव्रतों का पालन किया हो, परंतु विषय की आग उस चारित्र-साधना को जलाकर भस्मीभूत कर देती है और आत्मा यावत् अनंतसंसारी भी बन जाती है । इतना ही नहीं, दुर्लभता से प्राप्त सम्यक्त्व से भी आत्मा भ्रष्ट हो जाती है ।

विषयों की आसक्ति व्यक्ति को चारित्र से तो भ्रष्ट करती ही है, अति विषयासक्ति होने पर प्राप्त हुआ सम्यक्त्व भी चला जाता है । पाँच इन्द्रियों के भोगसुखों की आसक्ति के कारण संभूति मुनि, कंडरीक मुनि, कुलवालक मुनि आदि का चारित्र से पतन हुआ था और वे मरकर नरक चले गए ।

माता-पिता के कर्त्तव्य

छोटे बच्चों के प्रति किया गया अधिक कठोर व्यवहार लाभकारी नहीं होता है । कड़क शिक्षा बच्चों को सुधारने के बजाय बिगाड़ देती है ।

भीसण भवकांतारे, विसमा जीवाण विसयतिण्हाओ ।
जाए नडिआ चउदस-पुव्वी वि रुलंति हु निग्गोए ।।84।।

शब्दार्थ :

भीसण-**भयंकर**	नडिआ-**नाच किया है**
भवकांतारे-**भव जंगल में**	चउदसपूव्वी-**चौदह पूर्वी**
विसमा-**विषम**	वि-**भी**
जीवाण-**जीवों को**	रुलंति हु-**रोते हैं**
विसयतिण्हाओ-**विषय तृष्णा**	निग्गोए-**निगोद में**
जाए-**होने पर**	

भावार्थः- भीषण इस भव-जंगल में जीवों की विषय-तृष्णा बड़ी विचित्र है जिससे नचाए हुए चौदह पूर्वी भी निगोद में दुःखी होते हैं ।

विवेचन : विषय की तृष्णा बड़ी भयंकर है । ज्यों-ज्यों भोजन करते हैं, त्यों त्यों भूख शांत होती जाती है । ज्यों ज्यों पानी पीते हैं, त्यों-त्यों प्यास बुझती जाती है, परंतु आश्चर्य है कि पाँच इन्द्रियों के विषयों का ज्यों-ज्यों भोग किया जाता है, त्यों-त्यों उसकी भूख, उसकी प्यास बढ़ती ही जाती है ।

खुजली का दर्दी ज्यों-ज्यों खुजलाता है, त्यों-त्यों उसकी खुजली बढ़ती ही जाती है ।

पाँच इन्द्रियों के इन विषयों ने अज्ञानियों को तो भटकाया ही है, परंतु 14 पूर्वी, जो श्रुतकेवली कहलाते हैं, अन्तर्मुहूर्त में जो 14 पूर्वों का स्वाध्याय कर लेते हैं । केवली भगवंत तुल्य देशना देकर अनेकानेक भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हैं, परंतु वे भी जब विषयों के अधीन बन जाते हैं, तब उनकी भी हालत अत्यंत ही दयनीय हो जाती है । वे अपने चौदह पूर्वों को भी भूल जाते हैं और सम्यक्त्व से भ्रष्ट होकर नरक और निगोद में भी चले जाते हैं ।

चौदह पूर्वी नियम से सम्यग्दृष्टि होते हैं, सम्यग्दर्शन के अस्तित्व में संयमी अपने आयुष्य का बंध करे तो देवगति के ही आयुष्य का बंध करते हैं, परंतु जब वे विषयों में आसक्त होकर चारित्र व सम्यग्दर्शन से भी भ्रष्ट हो जाते हैं, तब आयुष्य का बंध करे तो नरक और निगोद में भी चले जाते हैं ।

हा विसमा हा विसमा विसया जीवाण जेहि पडिबद्धा ।
हिंडंति भवसमुद्दे, अणंतदुक्खाइं पावंता ।।85।।

शब्दार्थ :

हा विसमा-**खेद की बात है**	हिंडंति-**भटकते हैं**
विसया-**विषय**	भवसमुद्दे-**संसार सागर में**
जीवाण-**जीवों को**	अणंतदुक्खाइं-**अनंत दुःखों को**
जेहि-**जिनके द्वारा**	पावंता-**प्राप्त करते हुए ।**
पडिबद्धा-**प्रतिबद्ध**	

भावार्थः- बहुत ही खेद की बात है, दुःख की बात है कि ये विषय अत्यंत ही विषम हैं, जिनसे जुड़े हुए जीव संसार समुद्र में भटकते हैं और अनंत दुःख प्राप्त करते हैं ।

विवेचन : पाँच इन्द्रियों की आसक्ति आत्मा के लिए अत्यंत ही दुःखदायी है ।

◆ स्पर्शनेन्द्रिय का गुलाम बना हुआ हाथी जिंदगी भर महावत की पराधीनता सहन करता है ।

◆ रसनेन्द्रिय में आसक्त मछली मौत का शिकार होती है ।

◆ सुगंध में आसक्त बना भ्रमर कमल की पाँखों में बंद हो जाता है ।

◆ रूप दर्शन में आसक्त बना पतंगा दीपक की ज्वालाओं में भस्मीभूत हो जाता है ।

◆ कर्णप्रिय मधुर संगीत में मस्त बना हिरण शिकारी के जाल में फँस जाता है ।

एक-एक इन्द्रिय की आसक्ति इन तिर्यंच प्राणियों के लिए मौत का कारण बनती है तो जो मनुष्य पाँच इन्द्रियों का गुलाम बनेगा, उसकी क्या हालत होगी ?

अलि पतंग गज मीन मृग जरत एक ही आँच ।
तुलसी वे कैसे बचे जिन कह व्यापत प्राँच ।।

इन इन्द्रियों की आसक्ति उसे नरक और निगोद में धकेल देती हैं, जहाँ दीर्घ काल तक उसे रोग-वेदना और मौत की पीड़ा ही सहन करनी पड़ती है ।

माइंदजाल चवला, विसया जीवाण विज्जुतेअसमा ।
खणदिट्ठा खणनट्ठा ता तेसिं को हु पडिबंधो ।।86।।

शब्दार्थ :

माइंद जाल-**माया से इंद्रजाल**	खणनट्ठा-**क्षण में नष्ट हुए**
चवला-**चपल**	ता-**वे**
विसया-**विषय**	तेसिं-**उनका**
जीवाण-**जीवों के**	को हु-**क्या**
विज्जुतेअसमा-**विद्युत् के तेज समान**	पडिबंधो-**राग हो !**
खणदिट्ठा-**क्षण में देखे गए**	

भावार्थ:- जीवों के लिए ये विषय माया से रचे इन्द्रजाल की भाँति चपल हैं और आकाश में चमकती बिजली की भाँति क्षण में दिखाई देनेवाले और क्षण में नष्ट हो जाने के स्वभाववाले हैं, इस कारण उन विषयों में प्रतिबद्धता-आसक्ति क्यों ?

विवेचन : विषयों का अस्तित्व और उनसे उत्पन्न होनेवाला सुख अल्पकाल के लिए ही होता है ।

जिस प्रकार एक जादूगर लोगों की आँखों में धूल डालते हुए अनेक प्रकार के चमत्कार बतलाता है । परंतु वे सारे प्रयोग उसके झूठे-दिखावटी और नकली ही होते हैं । उनमें कुछ भी तथ्यांश नहीं होता है, उसी प्रकार पांच इन्द्रियों के विषयों में भी जो सुख दिखता है, वह इन्द्रजाल भी भाँति नकली ही है । वर्षा ऋतु में आकाश में बिजली चमकती है, परंतु उस बिजली का अस्तित्व कितनी देर के लिए ?

एक क्षण में वातावरण को प्रकाश से भर देने वाली बिजली दूसरे ही क्षण लुप्त हो जाती है । बस, विषयों से प्राप्त होनेवाला सुख भी क्षण-दृष्ट क्षणनष्ट जैसा ही है ।

सत्तू विसं पिसाओ बेआलो हुअवहो वि पज्जलिओ ।
तं न कुणइ जं कुविआ कुणंति रागाइणो देहे ।।87।।

शब्दार्थ :

सत्तू-**शत्रु**	तं-**वह**
विसं-**विष**	न कुणइ-**नहीं करता है**
पिसाओ-**पिशाच**	जं कुविआ-**जो कुपित हुए**
बेआलो-**वेताल**	कुणंति-**करते हैं**
हुअवहो-**अग्नि**	रागाइणो-**राग आदि**
वि-**भी**	देहे-**शरीर में**
पज्जलिओ-**प्रज्वलित**	

भावार्थः- शत्रु, विष, पिशाच, वेताल और प्रज्वलित अग्नि भी देह में जो नुकसान नहीं करते हैं, उससे भी अधिक नुकसान तीव्र बने राग आदि करते हैं ।

विवेचन : अपना कोई शत्रु विद्यमान हो तो वह धन आदि का नुकसान पहुँचाता है अथवा मौत के घाट उतारकर एक जीवन का अंत ला देता है ।

विष भक्षण करने से एक जीवन समाप्त होता है । पिशाच और वेताल नाराज हो जायें तो शांति से जीने नहीं देते हैं, वे बार-बार हैरान करते रहते हैं, जिसके फलस्वरूप एक जिंदगी बरबाद हो जाती है ।

प्रज्वलित आग इस देह को छू जाय तो इस देह को जलाकर राख कर देती है ।

इन सबसे जो नुकसान नहीं होता है, उससे भी अधिक, भयंकर और दीर्घकालीन नुकसान तीव्र बने हुए रागादि भाव करते हैं ।

अनुकूल विषयों का राग और प्रतिकूल विषयों का द्वेष आत्मा को भयंकर नुकसान पहुँचाता है ।

विषयों के राग ने त्यागी, तपस्वी और संयमी आत्माओं का भी अधः पतन कर दिया है ।

सिंह गुफावासी मुनि 4 माह के उपवास कर सके-अपनी शांत-प्रकृति द्वारा उन्होंने सिंह को भी शांत कर दिया, परंतु कोशा वेश्या के रूप में मुग्ध बने हुए वे उस राग भाव को जीत नहीं सके !

कोशा वेश्या पर रहे राग-भाव के कारण वे अपने ज्ञान-दर्शन और चारित्र रूपी रत्नों को भी फेंकने के लिए तैयार हो गए थे ।

अच्छा हुआ, कोशा वेश्या ने उन्हे संभाल लिया ।

जो रागाईण वसे, वसंमि जो सयल दुक्ख लक्खाणं ।
जस्स वसे रागाई, तस्स वसे सयलसुक्खाइं ।।88।।

शब्दार्थ :

जो-**जो,** रागाइण-**राग आदि के** वसे-**वश में**	जस्स-**जिसके,** वसे-**वश में** रागाई-**रागादि**
वसंमि-**वश में,** जो-**वह**	तस्स वसे-**उसके वशमें**
सयलदुक्खलक्खणं-**समस्त दुःखों का लक्षण**	सयल सुक्खाइं-**सभी सुख**

भावार्थः- जो रागादि के वश में है, वह सभी लाखों दुःखों के वश में है और रागादि जिसके वश में हैं, उसके वश में सभी सुख हैं ।

विवेचन : ग्रंथकार महर्षि ने इस गाथा में सभी प्रकार के सुख दुःख का मूल बता दिया है ।

संसार के सभी दुःखों का मूल राग आदि के वशीभूत होना है और संसार के सभी सुखों का मूल रागादि को वश में रखना है ।

राग-द्वेष के वश होकर आत्मा कौन-कौनसा पाप नहीं करती है ?

संसार में सभी प्रकार के पाप राग-द्वेष के कारण ही होते हैं ।

भर्तृहरि ने भी ठीक ही कहा है-

पाँच इन्द्रियों के जितने भी विषय हैं, वे सब एकदिन अवश्य ही जानेवाले स्वभाववाले हैं, तो फिर जीवात्मा उन विषयों का त्याग क्यों नहीं करता है !

यदि वे विषय जीवात्मा को छोडकर चले जाते हैं तो जीवात्मा को भयंकर संताप होता है और जीवात्मा स्वयं ही उन विषयों का त्याग कर दे, तो वह अनंत सुख के लिए होता है ।

इच्छापूर्वक किये गये त्याग को ही त्याग कहा जाता है । मजबूरी से या परिस्थितिवश जो वस्तु छोड़ देता है, उसे त्याग नहीं कहा जाता है ।

राग के त्याग के लिए जो मिठाई का त्याग करता है, वह त्यागी कहलाता है, जबकि मधुमेह Diabities डायाबिटिस के कारण मिठाई छोड़ दे तो वह मिठाई का त्यागी नहीं कहलाता है ।

B.P. या हार्ट की बीमारी के कारण घी का त्याग करनेवाला त्यागी नहीं कहलाता है, परंतु भोजन की आसक्ति को तोड़ने के लिए घी का त्याग करनेवाला अवश्य त्यागी कहलाएगा ।

केवल दुहनिम्मविए, पडिओ संसारसायरे जीवो ।
जं अणुहवइ किलेसं, तं आसवहेउअं सव्वं ।।89।।

शब्दार्थ :

केवल-**सिर्फ**	अणुहवइ-**अनुभव करता है**
दुहनिम्मविए-**दुःख से निर्मित**	किलेसं-**क्लेश को**
पडिओ-**गिरे हैं**	तं-**वह**
संसारसायरे-**संसारसागर में**	आसवहेउअं-**आस्रव हेतु**
जीवो-**जीव,** जं-**जो**	सव्वं-**सब**

भावार्थः- केवल दुःख से निर्मित इस संसार सागर में जीव जिन दुःखों का अनुभव करता है, उन सब दुःखों का मुख्य कारण आस्रव ही है ।

विवेचन : जिस प्रकार सागर जल से भरा होता है, उसी प्रकार यह सारा संसार नाना प्रकार के दुःखों से भरा हुआ है । इस संसार में जीवात्मा को जन्म का दुःख है, मृत्यु का दुःख है, रोग-शोक का दुःख है, आधि-व्याधि और उपाधि का दुःख है ।

उन सब दुःखों का मुख्य कारण आस्रव रूप हेतु है अर्थात् कर्म के आस्रव के कारण ही आत्मा इस संसार में भयंकर दुःखों का अनुभव करती है ।

आत्मा में कर्म के आस्रव का मुख्य हेतु विषयों की आसक्ति ही है ।

नवतत्त्व में आस्रव के 42 भेद बतलाए हैं-

5 इन्द्रियों की आसक्ति

4 कषायों का सेवन

5 अव्रत-हिंसादि पाँच पापों के त्याग की प्रतिज्ञा का अभाव

3 योग-मन-वचन और काया

25 ईयपिथिकी आदि 25 क्रियाएँ ।

कुलयोग = 42

इनमें मुख्यता 5 इन्द्रियों के विषयों की ही है । क्योंकि पाँच इन्द्रियों की आसक्ति के कारण ही आत्मा क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चार कषायों का सेवन करती है ।

इन्द्रियजन्य सुखों के रोग के कारण आत्मा हिंसा आदि पापों का त्याग करने के लिए तैयार नहीं होती है अर्थात् 5 अव्रतों का सेवन करती है ।

इन्द्रियों की आसक्ति ही मन, वचन और काया के योगों को अशुभ में प्रवर्तन कराती है । ईर्यापथिकी आदि 25 क्रियाओं का भी मूल मुख्यतया पाँच इन्द्रियों की आसक्ति ही है ।

ही संसारे विहिणा महिलारूवेण मंडिअं जालं ।
बज्झंति जत्थ मूढा, मणुआ तिरिआ सुरा असुरा ।।90।।

शब्दार्थ :

ही-**खेद है**	जत्थ-**जहाँ**
संसारे-**संसार में**	मूढा-**मूढ़**
विहिणा-**विधाता द्वारा**	मणुआ-**मनुष्य**
महिलारूवेण-**महिला रूप से**	तिरिआ-**तिर्यंच**
मंडिअं-**रचा है**	सुरा-**देव**
जालं-**जाल**	असुरा-**राक्षस**
बज्झंति-**बाँधे जाते हैं**	

भावार्थ:- दु:ख की बात है कि विधाता ने स्त्री के रूप में इस संसार में एक ऐसा जाल रचा है, जिसमें मोह से मूढ़ बने मनुष्य, तिर्यंच, देव और दानव सभी फँस जाते हैं ।

विवेचन : जैन दर्शन की मान्यता अनुसार इस संसार का निर्माण किसी विधाता या ब्रह्मा ने नहीं किया है । यह संसार तो अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहने के स्वभाववाला है । इस संसार में पुरुष की तरह स्त्री का अस्तित्व भी अनादिकाल से है । फिर भी उपदेश को पुष्ट करने के लिए कभी लौकिक मान्यताओं का भी वर्णन किया जाता है ।

प्रस्तुत गाथा में कहा है-`विधाता ने इस संसार में महिला का सृजन करके एक जाल ही रचा है । जिस प्रकार नदी या तालाब में जाल फेंका जाय तो मछली उसमें अवश्य फँस जाती है बस, इसी प्रकार विधाता ने महिला का जो रूप बनाया है, उस जाल में पुरुष अवश्य फँस जाता है ।

अनादिकाल के वेदोदय या मैथुन संज्ञा के कारण जीवात्मा में विजातीय आकर्षण रहा हुआ है । पुरुष को स्त्री का आकर्षण रहता है और स्त्री को पुरुष का ।

फिर भी उपदेश में पुरुष की प्रधानता होने से यहाँ कहा है कि स्त्री के जाल में मात्र मनुष्य ही नहीं फँसा है, परंतु देवी के जाल में देव भी फँसा है और तिर्यंचनी के जाल में सभी तिर्यंच भी फँसे हैं ।

विसमा विसयभुअंगा, जेहिं डसिया जिआ भववणंमि ।
कीसंति दुहग्गीहिं, चुलसीई जोणिलक्खेसु ।।91।।

शब्दार्थ :

विसमा-**विषम**	भववणंमि-**भववन में**
विसयभुअंगा-**विषय रूपी सर्प**	कीसंति-**क्लेश पाते हैं**
जेहिं-**जिनके द्वारा**	दुहग्गीहिं-**दुःख रूपी अग्नि द्वारा**
डसिया-**डसे हुए**	चुलसीइ-**चौरासी**
जिआ-**जीव**	जोणिल खेसु-**लाखयोनियों में**

भावार्थः- विषय रूपी सर्प बड़े भयंकर हैं जिनसे डसे हुए जीव चौरासी लाख जीव योनि रूप इस भव वन में दुःख रूपी अग्नि से क्लेश पाते हैं ।

विवेचन : इस संसार में जीवों की उत्पत्ति की 84 लाख योनियाँ बताई गई हैं । इन भिन्न भिन्न योनियों में संसारी जीव नाना-प्रकार की यातनाओं को सहन करता है ।

84 लाख योनियों में आत्मा के परिभ्रमण का मुख्य मूल-इन्द्रियों की आसक्ति ही है । ग्रंथकार महर्षि ने पाँच इन्द्रियों के इन विषयों को सर्प की उपमा दी है । इनसे डसे हुए जीव चौरासी लाख जीव योनियों में भयंकर दुःखों का अनुभव करते हैं ।

आत्मा के संसार परिभ्रमण का मूल मुख्यतया इन इन्द्रियों की आसक्ति ही है ।

विषयों में आसक्त बने देवता मरकर पृथ्वीकाय, अप्काय और वन-स्पतिकाय रूप एकेन्द्रिय में भी चले जाते हैं ।

पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय जीवों की कायस्थिति असंख्य उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी है, जब कि साधारण वनस्पति काय की कायस्थिति अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी है ।

विषयों में आसक्त बनकर एक बार आत्मा एकेन्द्रिय में चली गई तो फिर वापस उसका ऊपर उठना खूब मुश्किल हो जाता है ।

हे जीव ! जरा सोच, भूतकाल में हुई उन भूलों की पुनरावृत्ति करने जैसा नहीं है ।

संसारचार गिम्हे, विसयकुवाएहि लुक्किया जीवा ।
हिअमहिअं अमुणंताऽणुहवंति अणंतदुक्खाइं ।।92।।

शब्दार्थ :

संसारचार-**संसार कारागृह**	हिअं-**हित को**
गिम्हे-**ग्रीष्म में**	अहिअं-**अहित को**
विसय-**विषय**	अमुणंता-**नहीं जानते हुए**
कुवाएहि-**खराब पवन द्वारा**	अणुहवंति-**अनुभव करते हैं**
लुक्किया-**लू से ग्रस्त**	अणंत-**अनंत**
जीवा-**जीव**	दुक्खाइं-**दुःखों को**

भावार्थः- संसार की जेल Jail में विषय रूपी लू से पीड़ित हित-अहित को नहीं जानने वाला यह जीव अनंत दुःखों का अनुभव करता है ।

विवेचन : भयंकर गर्मी के दिनों में रेगिस्तान में जब गर्म-गर्म हवा चलती है, उसे लू कहते हैं । जब लू लग जाती है तो व्यक्ति बेभान-मूर्च्छित हो जाता है ।

मूर्च्छित व्यक्ति को हित-अहित का भान नहीं रहता है । बस, इसी प्रकार विषय रूपी लू से ग्रस्त जीव भी अपने हित-अहित को समझ नहीं पाता है, जिसके फलस्वरूप आत्मा अनंत दुःखों की भाजन बनती है ।

जिस प्रकार संसार-सागर से पार उतरने के लिए अरिहंत आदि नवपदों की आराधना बताई गई है, उसी प्रकार संसार-सागर में डूबने के लिए भी पाँच इन्द्रियाँ और चार कषाय रूपी नौ पद हैं । ``आतम के अहित विषय कषाय ।''

एक अपेक्षा से कषायों का भी मूल पाँच इन्द्रियाँ ही हैं ।

इन्द्रियसुख की प्राप्ति में बाधक बननेवाले व्यक्ति पर क्रोध पैदा होता है । अपनी कल्पनानुसार इन्द्रियजन्य सुखों की प्राप्ति हो जाय तो आत्मा में अभिमान पैदा होता है ।

इन्द्रियजन्य सुखों को पाने के लिए आत्मा माया-कपट का भी आश्रय करती है ।

पुण्य के उदय से इन्द्रियजन्य सुख जो भी मिले हों, वे संसारी जीव को हमेशा कम ही लगते हैं, अतः वे सुख अधिक-से-अधिक मिलें, उसका लोभ मन में सदा बना रहता है । इस प्रकार विषयों की आसक्ति के कारण ही आत्मा क्रोध आदि चारों प्रकार के कषायों का भी सेवन करती है ।

आसक्ति पूर्वक भोगे गए वे ही सुख जीवात्मा के लिए भाविदुःख और दुर्गति का कारण बनते हैं ।

हा हा दुरंत दुट्ठा विसयतुरंगा कुसिक्खिआ लोए ।
भीसण भवाडवीए, पाडंति जिआण मुद्धाणं ।।93।।

शब्दार्थ :

हा हा-**अति खेद है**	भीसण-**भयंकर**
दुरंत दुट्ठा-**खराब अंतवाले दुष्ट**	भव-**संसार**
विसय-**विषय**	अडवीए-**जंगल में**
तुरंगा-**घोड़े**	पाडंति-**गिराते हैं**
कुसिक्खिआ-**कुशिक्षित**	जिआण-**जीवों को**
लोए-**लोक में**	मुद्धाणं-**मुग्ध**

भावार्थ:- खेद की बात है कि दुष्ट और कुशिक्षित ऐसे विषय रूपी घोड़े मुग्ध जीवों को भयंकर महा अटवी में डालते हैं ।

विवेचन : घुड़सवारी करनी हो अथवा घोड़ागाड़ी में घोड़ा जोड़ना हो तो उसको ट्रेनिंग देना जरूरी है । प्रशिक्षित घोड़ा घुड़सवार या मालिक को उसकी इच्छानुसार ले जाता हैं, जबकि जो घोड़ा दुष्ट व विपरीत रूप से शिक्षित होता है, वह मालिक को पतन के गर्त में ही डालता है ।

मानव को प्राप्त ये इन्द्रियाँ भी घोड़े की भाँति हैं । यदि ये इन्द्रियाँ अंकुश में हों तो आत्मा को सही सलामत सुरक्षित स्थान पर पहुँचाती हैं और इन इन्द्रियों पर अंकुश न हो तो ये इन्द्रियाँ आत्मा को पतन के गर्त में ही गिराती हैं ।

अशिक्षित या विपरीत घोड़ा तो थोड़ा ही नुकसान करता है, परंतु ये निरंकुश इन्द्रियाँ तो आत्मा को संसार में अनेक भवों तक अनेक योनियों में भटकाती है ।

माता-पिता के कर्त्तव्य

संस्कारों का दान वो ही कर सकेगा जो स्वयं संस्कारी हो, अतः अपनी संतानों में संस्कारों की अपेक्षा रखने वाले माता–पिता को भी संस्कारी बनना अत्यावश्यक है ।

विसय पिवासातत्ता, रत्ता नारीसु पंकिलसरंमि ।
दुहिआ दीणा खीणा, रुलंति जीवा भववणंमि ।।94।।

शब्दार्थ :

विसय-**विषय**	दुहिआ-**दुःखी**
पिवासा-**प्यास**	दीणा-**दीन**
अतत्ता-**अतृप्त**	खीणा-**क्षीण**
रत्ता-**रक्त**	रुलंति-**रोते हैं**
नारीसु-**स्त्रियों में**	जीवा-**जीव**
पंकिल-**कीचड़वाला**	भववणंमि-**भव जंगल में**
सरंमि-**सरोवर में**	

भावार्थः- विषय की प्यास से संतप्त, कीचड़वाले सरोवर की तरह नारी में आसक्त, दुःखी, दीन और क्षीण जीव भववन में भटकते हैं ।

विवेचन : जिन जीवों की विषय की प्यास कभी शांत नहीं हुई है, ऐसे विषय की पिपासा से अतृप्त जीव स्त्रियों के रूप-सौंदर्य और भोग में अत्यंत ही आसक्त होते हैं । इसी आसक्ति के पाप के कारण वे आत्माएँ दीन बनती हैं, दुःखी होती हैं, काया से कृश बनती है और संसार के वन में जहाँ-तहाँ भटकती हैं ।

स्त्री के भोग से पुरुष की ही शक्ति समाप्त हो जाती है, वह शारीरिक दृष्टि से कमजोर हो जाता है और आगे चलकर अनेक रोगों का शिकार बन जाता है । वे काम-भोग इस जन्म में भी मानव को कमजोर बनानेवाले हैं और परलोक में भी आत्मा को दुर्गति के गर्त में गिरानेवाले हैं ।

माता-पिता के कर्त्तव्य

जो माता–पिता अपनी संतानों को वारसे में सिर्फ धन ही देते हैं, उन्होंने कुछ भी नहीं दिया है, परन्तु जिन माता-पिताओं ने अपनी संतानों को सुसंस्कारों से सुवासित किया है, उन्होंने अपनी संतानों को सब कुछ दिया है ।

गुणकारिआइ घणियं, धिइरज्जुनिअंतिआइं तुह जीव ।
निअयाइं इंदिआइं, वल्लिनियत्ता तुरंगुव्व ।।95।।

शब्दार्थ :

गुणकारिआइ-**गुणकारी**	निअयाइं-**अपनी**
घणियं-**अत्यंत**	इंदियाइं-**इन्द्रियाँ**
धिइरज्जु-**धृतिरूपी डोरी**	वल्लि-**बाल**
निअंतिआइं-**नियंत्रित**	नियत्ता-**नियंत्रित**
तुह-**तुझे**	तुरंगुव्व-**घोड़े की तरह**
जीव-**हे जीव !**	

भावार्थः- जिस प्रकार डोरी से नियंत्रित अश्व गुणकारी है, उसी प्रकार धृति रूपी डोरी से नियंत्रित इन्द्रियाँ भी अतिशय गुण करनेवाली हैं ।

विवेचन : घोड़े पर यदि लगाम-नियंत्रण है तो वह घोड़ा, घुड़सवार को उसकी इच्छानुसार ले जाएगा और जिस घोड़े पर नियंत्रण नहीं होगा, वह घोड़ा, घुड़सवार को कहीं भी खड्डे में गिरा देगा ।

घोड़े पर नियंत्रण जरूरी है । बस, इसी प्रकार मनुष्य को प्राप्त इन पाँच इन्द्रियों पर यदि नियंत्रण है तो ये ही इन्द्रियाँ मनुष्य को मोक्षमार्ग में आगे बढ़ाती हैं और जो व्यक्ति इन इन्द्रियों का गुलाम है अर्थात् इन्द्रियों की इच्छा के अनुसार प्रवृत्ति करता है, उसे ये इन्द्रियाँ पतन के गर्त में गिराये बिना नहीं रहती हैं । हे आत्मन् ! इन इन्द्रियों को धैर्य रूपी लगाम द्वारा वश में रखने का सतत प्रयत्न करना चाहिए ।

वश में रही इन्द्रियाँ आत्मा को प्रगति के पथ पर ले जाती हैं, जब कि इन्द्रियों के पराधीन व्यक्ति को ये इन्द्रियाँ दुर्गति के मार्ग पर ही ले जाती हैं ।

माता-पिता के कर्त्तव्य

छोटे बच्चों से भूलें हो सकती हैं, अतः उन्हें प्रेम व वात्सल्य से समझाना चाहिए । बारबार डाँटने, फटकारने से बच्चे सुधरते नहीं किंतु बिगड़ जाते हैं ।

मण वयण काय जोगा, सुनिअत्ता ते वि गुणकरा हुंति ।
अनिअत्ता पुण भंजंति मत्त करिणुव्व सीलवणं ।।96।।

शब्दार्थ :

मण-**मन**	हुंति-**होते हैं**
वयण-**वचन**	अनिअत्ता-**अनियंत्रित**
कायजोगा-**काय योग**	पुण-**भी**
सुनिअत्ता-**अच्छी तरह से नियंत्रित**	भंजंति-**नष्ट करते हैं**
ते-**वे**	मत्त-**मत्त**
वि-**भी**	करिणुव्व-**हाथी की तरह**
गुणकरा-**गुणकारी**	सीलवणं-**चारित्र रूपी वन को**

भावार्थ:- वश में किये गये मन, वचन और काया के योग भी गुणकारी होते हैं जबकि वश में नहीं रहे ये योग मदोन्मत्त हाथी की तरह चारित्र रूपी वन का नाश ही करते हैं ।

विवेचन : मद से उन्मत्त बना हुआ हाथी किसी के वश में नहीं रहता है, वह उन्मत्त होकर तोड़फोड़ करता है, बस, इसी प्रकार जिस व्यक्ति का अपने मन, वचन और काया पर नियंत्रण नहीं है तो वे अनियंत्रित योग शील-सदाचार रूपी वन को नष्ट किए बिना नहीं रहते हैं । चारित्र धर्म के पालन के लिए मन, वचन और काया को वश में रखना खूब जरुरी है ।

जिस प्रकार मारुतिकार 100 कि.मी. की Speed से दौडती हो, परंतु उसका ब्रेक (Brake) नियंत्रण (Control) में न हो तो वह गाडी अपने लक्ष्य स्थल पर पहुँचाने के बजाय मौत का ही कारण बनती हैं, उसी प्रकार चारित्र धर्म का स्वीकार करने के बाद जिसके मन, वचन और काया के योग वश में नहीं होते है, उसका चारित्र सुरक्षित नहीं रह पाता हैं ।

चारित्र ग्रहण करने के बाद भी जो मन में अशुभ विचार करता रहता है । अपनी वाणी द्वारा जो निरर्थक बकवास करता रहता है और काया द्वारा अशुभ प्रवृत्ति करता रहता है, उसका चारित्र सुरक्षित कैसे रह पाएगा ! अर्थात् उसका चारित्र नष्ट हुए बिना नहीं रहता है ।

बाह्य अशुभ निमित्तों को पाकर मन चंचल हुए बिना नहीं रहता हैं, अतः मन की सुरक्षा के लिए अशुभ निमित्तों से सर्वथा दूर रहना खूब खूब जरुरी है ।

जैसे छोटीसी भी चिनगारी भयंकर दावानल का रुप ले लेती हैं, उसी प्रकार एक छोटासा भी अशुभ निमित्त मन को शिखर पर से गिराकर तलहटी पर ला देता है, अतः अशुभ निमित्तों से सदैव कोसो दूर ही रहना चाहिये ।

किसी विरल आत्मा में ही यह सामर्थ्य होता हैं कि भयंकर से भयंकर अशुभ निमित्त को पाकर भी उनके रोम में लेश भी अशुभ भाव पैदा नहीं होता है । स्थूल भद्रजी जैसे शिखर पर रहे महात्माओं का अनुकरण हम नहीं कर सकते है । वे तो काम के घर में रहकर भी काम का सर्वथा नाश कर पाए-वहां हमारा काम नहीं है । हमें तो अशुभ निमित्तों की छाया से भी दूर ही रहना चाहिये ।

वचन के पाप भी खूब भयंकर है । 18 पाप स्थानकों में से बहुत से पाप वाणी द्वारा ही होते है । झूठ बोलना, क्रोध, मान, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, चाडी-चुगली खाना, निंदा, मायापूर्वक झूठ बोलना आदि पापाचरणों में वाणी की ही मुख्यता है । संयम की सुरक्षा के लिए वाणी पर नियंत्रण खूब जरुरी है । वाणी पर नियंत्रण के अभाव में आत्मा निरर्थक कई पाप कर लेती है ।

माता-पिता के कर्त्तव्य

छोटे बालक को बात-बात में डराना नहीं चाहिए ! ऐसा करने पर वह डरपोक बनता है ।

विद्यार्जन का मुख्य उद्देश्य अर्थार्जन नहीं बल्कि जीवन को संस्कारित करना होना चाहिए ।

संतानों को संस्कारी बनाना हो तो माता-पिता को सदाचारी बनना जरूरी है ।

जह जह दोसा विरमइ, जह जह विसएहिं होइ वेरग्गं ।
तह तह विन्नायव्वं, आसन्नं से य परमपयं ।।97।।

शब्दार्थ :

जहजह-**जैसे जैसे**	तह तह-**त्यों त्यों**
दोसा-**दोष**	विन्नायव्वं-**जानना चाहिए**
विरमइ-**विराम पाते हैं**	आसन्नं-**नजदीक**
जह जह-**जैसे जैसे**	से-**उसको**
विसएहि-**विषयों से**	य-**वह**
होइ-**होता है**	परमपयं-**परमपद**
वेरग्गं-**वैराग्य**	

भावार्थः- ज्यों ज्यों रागादि दोष विराम पाते हैं, ज्यों-ज्यों विषयों से वैराग्य होता है, त्यों त्यों समझना चाहिए कि उस व्यक्ति का परमपद नजदीक है ।

विवेचन : मोक्ष अर्थात् सिद्धशिला भले ही यहाँ से 7 राजलोक दूर है, परंतु उस मोक्ष को भी नजदीक लाने की ताकत विषयों के प्रति रहे वैराग्य भाव में है ।

विषयों की आसक्ति तथा विषयों के सेवन से आत्मा में राग भाव पुष्ट होता है और विषयों के प्रति रहे वैराग्य भाव से राग भाव भी मंद होता जाता है ।

ज्यों ज्यों विषयों का राग घटता जाएगा, त्यों त्यों दूर रहा मोक्ष भी नजदीक आता जाएगा ।

ज्यों ज्यों विषयों का राग बढ़ता है, त्यों त्यों मोक्ष दूर होता जाता है, अतः दूर रहे मोक्ष को नजदीक लाना हो तो उसका सर्वश्रेष्ठ और सरल उपाय है विषयों के राग भाव को तोड़ना । विषयों के प्रति रहे राग भाव को तोड़ने का उपाय है-विषयों में दोषदर्शन !

किसी भी वस्तु में गुणदर्शन से उस वस्तु का राग भाव बढ़ता है और उसी वस्तु में दोष देखने से उस वस्तु के प्रति रहा राग भाव घटता जाता है ।

विषयों का राग कितना अनर्थकारी है, उसे बार बार याद रखें । साँप की चमड़ी सुकोमल है, परंतु साँप से की गई दोस्ती तो भयंकर ही है ।

विषयों का आकर्षण साँप से भी ज्यादा खतरनाक है ।

ठीक ही कहा है-

'आसन्नकाल भवसिद्धिअस्स जीवस्स लक्खणं इणमो ।
विसयसुहेसु न रज्जइ, सव्वत्थायेसु उज्जमइ ।।'

अर्थ : निकट मोक्षगामी आत्माओं का यह लक्षण है कि वे विषय सुखों में राग न हो, इसके लिए प्रबल पुरुषार्थ करती हैं ।

दुक्करमेएहिं कयं जेहिं समत्थेहि जुव्वणत्थेहिं ।
भग्गं इंदिअसिन्नं, धिइपायारं विलग्गेहिं ।।98।।

शब्दार्थ :

दुक्करं-**दुष्कर**	अत्थेहिं-**अवस्था द्वारा**
एएहिं-**उनके द्वारा**	भग्गं-**नष्ट किया**
कयं-**किया गया**	इदिअसिन्नं-**इंद्रिय सैन्य को**
जेहिं-**जिनके द्वारा**	धिइ-**धृति**
समत्थेहि-**समर्थ**	पायारं-**किले को**
जुव्वण-**यौवन**	विलग्गेहिं-**आरूढ़ हुए के द्वारा**

भावार्थ:- शरीर से समर्थ और यौवन वय होने पर भी जिन पुरुषों ने धैर्यरूप किले का आश्रय लेकर इन्द्रिय रूपी सैन्य को नष्ट कर दिया है । सचमुच...उन्होंने दुष्कर कार्य किया है ।

विवेचन : यौवन वय में इन्द्रियों का जोर अधिक होता है । एक छोटासा निमित्त पाकर भी ये इन्द्रियाँ जल्दी उत्तेजित हो जाती हैं । यौवन वय में पाँच इन्द्रियों के अनुकूल विषयों के प्रति आकर्षण भी खूब होता है, ऐसी युवावस्था को पाकर भी जो पुरुष इन्द्रियों के वश में नहीं होते हैं, धैर्य का आलंबन लेकर इन्द्रिय सैन्य को जिन्होंने जीत लिया है, सचमुच, ऐसे पुरुष धन्यवाद के पात्र हैं ।

दुर्भाग्य है कि देश-दुनिया में आज इन्द्रियों के गुलाम व्यक्तियों को प्रोत्साहन दिया जाता है ।

अपने रूप-सौंदर्य का खुले आम प्रदर्शन करनेवाली चरित्रहीन स्त्रियों को 'विश्वसुंदरी' का खिताब दिया जाता है । उनका आदर-बहुमान किया जाता है ।

सचमुच, आदरणीय और पूजनीय तो वे हैं, जो इन्द्रियों के विजेता बने हैं । इन्द्रियों को अपने अंकुश में रखकर आत्म कल्याण की आराधना-साधना करते हैं ।

ठीक ही कहा है–

'अतिवाहितमतिगहनं विनापवादेन यौवनं येन ।
दोषनिदाने जन्मनि किं न प्राप्तं फलं तेन ।।'

अर्थ : `दोष के हेतुभूत इस जन्म में गहन मतिवाले ने यदि यौवन को बेदाग प्रसारित किया है, तो उसने इस जन्म में कौनसा फल प्राप्त नहीं किया हैं !'

यौवन को बेदाग प्रसारित करना सबसे कठिन साधना है, परंतु कई सत्त्वशाली लोग युवावस्था में भी काम को जीतकर अपने यौवन को बेदाग रखने में सक्षम बन जाते हैं । सचमुच, वे खूब-खूब धन्यवाद के पात्र हैं ।

जिसका यौवन बेदाग गया, उसका संपूर्ण जीवन बेदाग जाएगा, क्योंकि जीवन में अधिकांशतः दाग युवावस्था में ही लगता है ।

जिसने अपने जीवन को बेदाग रखा, उस आत्मा की प्रायः सद्‌गति निश्चित है, परंतु इन्द्रियों के अधीन बनकर जिसने कुकर्म किये, जीवन को कलंकित किया, उस व्यक्ति की दुर्गति निश्चित ही है । अतः इस भव को और पर भव को सुधारना हो तो इन इन्द्रिय रूपी घोड़ों को अवश्य वश में रखें ।

संतान के कर्त्तव्य

16 वर्ष से अधिक उम्र के पुत्रों और पुत्रवधुओं को बात-बात में शिक्षा देना उचित नहीं है ।

बच्चों के प्रति लाड़–प्यार की भी अपनी मर्यादा होनी चाहिए । अति लाड़–प्यार से बच्चे बिगड़ जाते हैं ।

माता–पिता के हृदय में संतानों के प्रति प्रेम, स्नेह व वात्सल्य होना चाहिए ।

ते धन्ना ताण नमो, दासोहं ताण संजमधराणं ।
अद्धच्छि-पिच्छरीओ, जाण न हिअए खुडुक्कंति ।।99।।

शब्दार्थ :

ते-**वे**	अद्धच्छि-**अर्धाक्षी**
धन्ना-**धन्य हैं**	पिच्छरीओ-**देखनेवाली**
ताण-**उनको**	जाण-**जिनके**
नमो-**नमस्कार हो**	न-**नहीं**
दासोहं-**मैं दास हूँ**	हिअए-**हृदय में**
ताण-**उन**	खुडुक्कंति-**प्रकट होती है**
संजमधराणं-**संयमियों का**	

भावार्थ :- ***वे पुरुष धन्य हैं, उनको नमस्कार हो, उन संयमधरों का मैं दास हूँ जिनके हृदय में कटाक्ष से देखनेवाली स्त्रियाँ लेश मात्र भी खटकती नहीं हैं ।***

विवेचन : स्त्रियाँ अपने कटाक्ष रूपी बाणों के द्वारा बलवान पुरुषों के हृदय को भी बींध लेती हैं । ढ़ाल द्वारा किसी के बाण के प्रहार से अपने आपको बचाया जा सकता है, परंतु स्त्री के कटाक्ष बाणों से अपने आपको बचाना असम्भव नहीं तो भी कठिन कार्य तो अवश्य है ।

निकट मोक्षगामी आत्माएं अवश्य ही इन इन्द्रियों को अपने वश में कर लेती हैं ।

ऐसे सत्त्वशाली पुरुष धन्यवाद के पात्र हैं, उनको मैं सद्भावपूर्वक नमस्कार करता हूँ । उन निर्मल संयमी आत्माओं का मैं दास हूँ । सचमुच, वे इस धरती के शणगार हैं । ये स्त्रियाँ तो अनेक अनेक दोषों का घर हैं । माया-कपट का मंदिर हैं । नरक का द्वार हैं, अविश्वास का स्थान हैं अर्थात् पूर्ण विश्वास करने योग्य नहीं हैं ।

माता-पिता के कर्त्तव्य

माँ अपने स्तनपान के माध्यम से मात्र प्रेम व वात्सल्य ही नहीं देती है, बल्कि 'अच्छे' या 'बुरे' संस्कारों का सिंचन भी करती है ।

किं बहुणा जइ वंछसि, जीव तुमं सासयं सुहं अरुअं ।
ता पिअसु विसय विमुहो, संवेगरसायणं निच्चं ।।100।।

शब्दार्थ :

किं-**क्या**	अरुअं-**रोग रहित**
बहुणा-**ज्यादा**	ता-**तो**
जइ-**यदि**	पिअसु-**पीओ**
वंछसि-**चाहते हो**	विसय-**विषय**
जीव-**हे जीव**	विमुहो-**विमुख**
तुमं-**तुम**	संवेगरसायणं-**संवेग रूपी रसायन को**
सासयं सुहं-**शाश्वत सुख**	निच्चं-**नित्य**

भावार्थः- ज्यादा क्या कहना ? हे जीव ! यदि तुम निराबाध शाश्वत सुख पाना चाहते हो तो विषयों से विमुख होकर हमेशा संवेग रूपी रसायन का पान करो ।

विवेचन : इन्द्रिय पराजय शतक ग्रंथ के रचयिता ग्रंथ का समापन कर रहे हैं । सामान्यतया ग्रंथकार महर्षि ग्रंथ के अंत में अपनी गुरु-परंपरा आदि का नामोल्लेख कर ग्रंथ की प्रशस्ति लिखते हैं । परंतु प्रस्तुत ग्रंथकार महर्षि ने अपने नाम का कहीं उल्लेख नहीं किया है । यह ग्रंथ अज्ञातकर्तृक है ।

हाँ, इस ग्रंथ पर खरतरगच्छीय उपाध्याय प्रवर श्री जयसोम गुरु के शिष्यरत्न वाचकवर्य श्री गुणविजयजी द्वारा वि.सं. 1667 में संस्कृत टीका रची गई है ।

प्रस्तुत हिन्दी विवेचन में उस टीका की मदद ली गई है ।

ग्रंथ का उपसंहार करते हुए ग्रंथकार महर्षि कहते हैं कि इन्द्रियों को जीतना बहुत ही कठिन कार्य है, परंतु असाध्य नहीं है । निरंतर पुरुषार्थ द्वारा उन्हें भी वश में किया जा सकता है ।

संसार में जो कुछ सुख है, वह दुःखमिश्रित है, जबकि मोक्ष में जो सुख है वह दुःख के लेश भी मिश्रण से सर्वथा रहित है । ऐसे मोक्षसुख को पाने की तीव्र उत्कंठा हो तो निरंतर विषयों से विमुख बनकर संवेग रूपी रसायन का पान करो ।

'इन्द्रिय पराजय शतक' नामका प्रस्तुत ग्रंथ संवेग-रसायन स्वरूप है । इसमें अनेक अनेक दृष्टिकोणों Angle से इन्द्रियों के विषयों की अनर्थता समझाई है ।

राजीमती, ब्रह्मदत्त आदि प्राचीन दृष्टांतों का भी नामोल्लेख किया है। अनेक तर्क, युक्तियों और आगम पाठों द्वारा ग्रंथकार महर्षि अपने लक्ष्य को साधने में पूर्ण सफल हुए हैं।

तत्त्वपिपासु और मुमुक्षु आत्माओं को अवश्य ही यह ग्रंथ कंठस्थ करना चाहिए। ग्रंथ के पदार्थों का पुनः पुनः परिशीलन करना चाहिए।

प्रशस्ति

अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यास प्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के चरम शिष्यरत्न जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर **पू.पंन्यास श्री रत्नसेनविजयजी म.सा. (वर्तमान में पू. आचार्य देव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.)** ने दि. 5-6-2010 को पोयनाड में **'इन्द्रिय पराजय शतक'** ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद प्रारंभ किया औव दि. 5-7-2010 को रोहा (महाराष्ट्र) में समाप्त किया।

माता-पिता के कर्त्तव्य

बालक के जीवन पर संगति का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। अच्छी संगति से उसका जीवन सुधर सकता है और बुरी संगति से उसका जीवन बिगड़ भी सकता है। बच्चा किनके साथ रहता है, खेलता है, उसका अवश्य ध्यान रखें।

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न,
पू.आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.
द्वारा मुख्यतया हिन्दी भाषा में आलेखित
236 पुस्तकों में से उपलब्ध एवं अवश्य पठनीय साहित्य-सूची

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य	Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	चिंतन का अमृत-कुंभ	80/-	36.	कर्मग्रंथ (भाग-1)	160/-
2.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-1)	100/-	37.	दूसरा-तीसरा कर्मग्रंथ	55/-
3.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-2)	100/-	38.	गणधर-संवाद	80/-
4.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-3)	125/-	39.	आओ ! उपधान पौषध करें !	55/-
5.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-4)	135/-	40.	नवपद आराधना	80/-
6.	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	150/-	41.	संस्मरण	50/-
7.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-	42.	भव आलोचना	10/-
8.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-	43.	बीसवी सदी के महान योगी	300/-
9.	विविध-तपमाला	100/-	44.	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-
10.	विवेकी बनो	90/-	45.	आध्यात्मिक पत्र	60/-
11.	प्रवचन-वर्षा	60/-	46.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
12.	आओ श्रावक बनें !	25/-	47.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
13.	व्यसन-मुक्ति	100/-	48.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
14.	श्रावक जीवन दर्शन	250/-	49.	श्री नमस्कार महामंत्र	180/-
15.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (1 से 9)	300/-	50.	महामंत्र की अनुप्रेक्षाएँ	150/-
16.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (10 से 40)	275/-	51.	नमस्कार मीमांसा	150/-
17.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (41 से 57)	275/-	52.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	200/-
18.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (58 से 80)	280/-	53.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-1	200/-
19.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	50/-	54.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-2	200/-
20.	समाधि मृत्यु	80/-	55.	सज्झायों का स्वाध्याय	100/-
21.	Pearls of Preaching	60/-	56.	वैराग्य-वाणी	140/-
22.	New Message for a New Day	600/-	57.	सम्यग्दर्शन का सूर्योदय	160/-
23.	Celibacy	70/-	58.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	200/-
24.	Panch Pratikraman Sootra	100/-	59.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	240/-
25.	अमृत रस का प्याला	300/-	60.	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	120/-
26.	ध्यान साधना	40/-	61.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें !	150/-
27.	आग और पानी-भाग-1-2	115/-	62.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-
28.	शांत सुधारस-हिन्दी -भाग-1-2	140/-	63.	जीवन झांकी	अमूल्य
29.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-	64.	मन के जीते जीत है	80/-
30.	प्रेरक-प्रवचन	80/-	65.	प्रातः स्मरणीय महापुरुष भाग-1	300/-
31.	जीव विचार विवेचन	100/-	65.	प्रातः स्मरणीय महापुरुष भाग-2	300/-
32.	नवतत्त्व विवेचन	110/-	67.	प्रातः स्मरणीय महासतियाँ भाग-1	280/-
33.	दंडक सूत्र विवेचन	90/-	68.	प्रातः स्मरणीय महासतियाँ भाग-2	300/-
34.	लघु संग्रहणी	140/-	69.	इन्द्रिय पराजय शतक	150/-
35.	तीन भाष्य (हिन्दी विवेचन)	150/-	70.	संबोह-सित्तरि	160/-

पुस्तक प्राप्ति स्थान : दिव्य सन्देश प्रकाशन C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. M. 8484848451 (only whatsapp)

Kamal PRINTER'S M. 9820530299